क्षमा वीरस्य भूषणम्

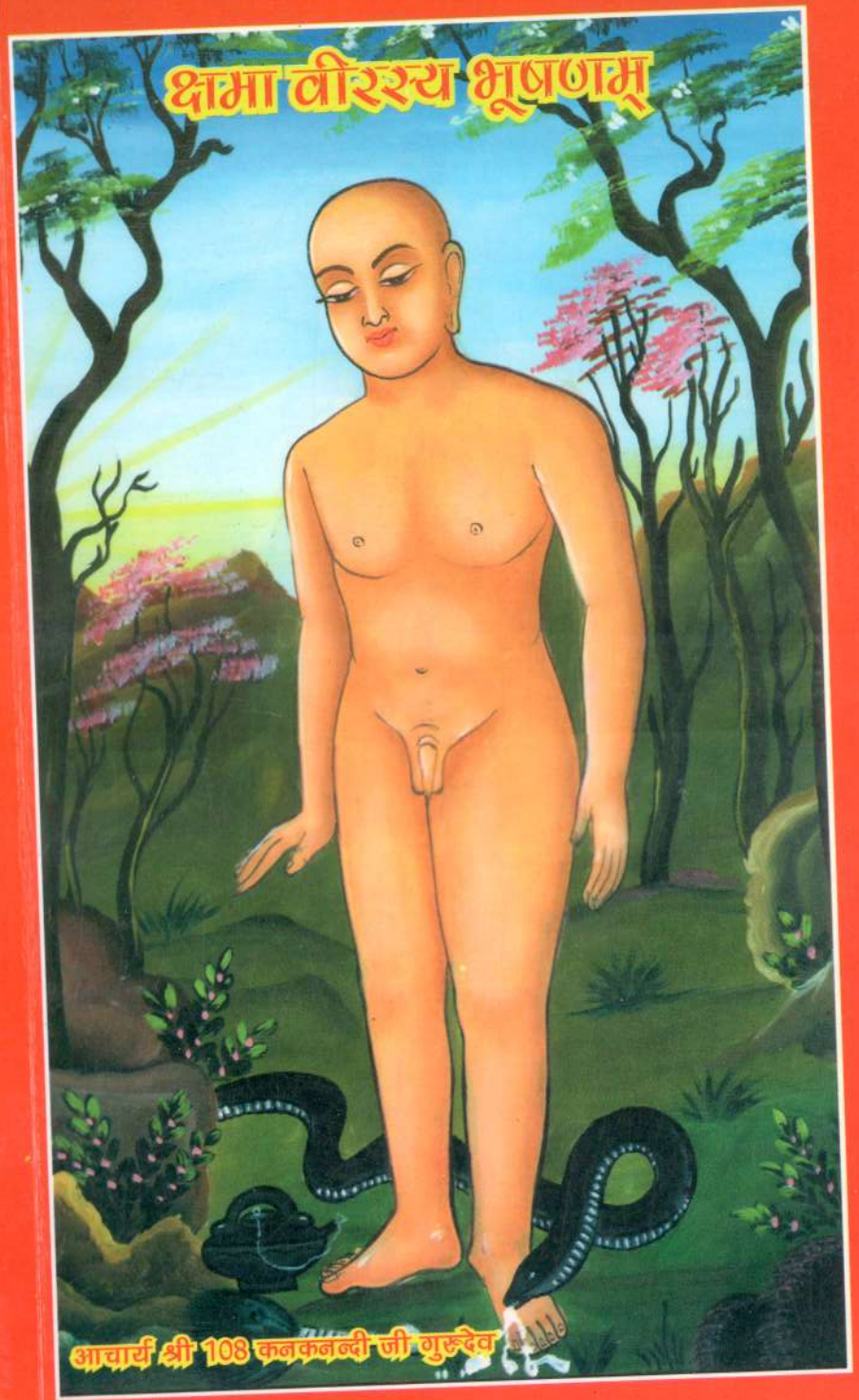

आचार्य श्री 108 कनकनन्दी जी गुरुदेव

क्षमा वीरस्य भूषणम्

आयड़ (उदयपुर) में आयोजित
चतुर्थ विराट राष्ट्रीय वैज्ञानिक
संगोष्ठी की पावन वेला में
प्रकाशित – यह ग्रन्थ

ज्ञानदानी / द्रव्यदाता –

श्री मोहनलाल नागदा "आशीर्वाद"

8, मेहताजी की बाड़ी, गुलाब बाग़

उदयपुर – 313 001

फोन – 422751, 412609

आचार्यश्री कनकनन्दी

प्रकाशक–धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान

संस्थान का इंटरनेट – wwwjainkanknandhi.org

धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान ग्रंथाक - 25

पुस्तक – क्षमा वीरस्य भूषणम्
लेखक – वैज्ञानिक धर्माचार्य आचार्य रत्न कनकनंदी जी गुरूदेव
आशीर्वाद – गणधराचार्य श्री कंथुसागर जी गुरूदेव
सहयोगी – मुनिश्री विद्यानंदी जी,
मुनिश्री आज्ञासागर जी
आचार्य ऋद्धिश्री
परम शिरोमणि संरक्षण – "दानश्री" श्री रमेशचन्द्र जी कोटड़िया
(दानवीर, गुरूभक्त, उद्योगपति, प्रतापगढ़ नि. मुबंई अमेरिका प्रवासी)
फोन – (022) 9017281, 8016207, 8954989
अध्यक्ष – 'दानश्री' श्री गुणपाल जी जैन
(भूतपूर्व इंजीनियर, वर्तमान उद्योगपति)
वरिष्ठोपाध्यक्ष – 'प्रज्ञापुँज' श्री सुशील चन्द्र जी जैन
(एम.एस.सी. भूतपूर्व भौतिक शास्त्र प्रवक्ता
बड़ौत (मेरठ) फोन – (01234) 62845
कार्याध्यक्ष – श्री गुरूचरण एम. जैन (वकील हाईकोर्ट, मुंबई)
उपाध्यक्ष – 1. श्री प्रभातकुमार जी जैन
(एम.एस.सी. रसायन शास्त्र)
मुजफ्फरनगर – फोन – (0131) 431998
2. 'सेवाश्री' राजमल जी पाटोदी
(कर्त्तव्यनिष्ठ, सामाजिक कार्यकर्त्ता, कोटा)
फोन–(0744) 23474
3. श्री रघुवीर सिंज जैन
(एम.एस.सी., एल.एल.बी रिटायर्ड हैड ऑफ
कैमेस्ट्री व प्रिंसीपल डी.ए.बी.पी.जी. कॉलेज)
फोन – (0131) 26514, 407865
मानक निर्देशक – "सरस्वती पुत्र डॉ. राजमल जी जैन
(अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक)
संयुक्त मंत्री – श्री पंकज कुमार जी जैन (बी.एस.सी.) बड़ौत
फोन – (01234) 65076, 73179

संस्करण – तृतीय ज्ञान प्रचारार्थ मूल्य 21/- प्रतियाँ 1000

संस्थान की शाखायें एवं प्राप्ति स्थान –

1. श्री सुशीलचन्द्र जी जैन, धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान निकट दि.जैन धर्मशाला, बड़ौत
2. श्रीमती रत्नमाला जैन द्वारा–डॉ. राजमल जी जैन 4–5, आदर्श कॉलोनी, पूला, उदयपुर (राज.) फोन – (0294) 440793
3. श्री गुणपाल जी जैन, बेहड़ा भवन, 87/1 कुंदनपुरा, मुजफ्फरनगर फोन – (0131) 450229
4. श्री लक्ष्मी गुरूचरण जी जैन, 144 मुवी टॉवर, नियर मिल्लतनगर, लोखण्डवाला कॉम्पलेक्स, अंधेरी (वेस्ट) मुंबई फोन (022) 6327152, 6312124, 63271152
5. 'सेवाश्री' सुरेखा जैन (शिक्षिका) पत्नी श्री वीरेन्द्र चंद्र, डालचंद जी गड़िया, कपड़े के व्यापारी, सलूम्बर जिला उदयपुर पिन – 313001 फोन (02906) 32043
6. श्री महावीर कुमार जैन, 13 अग्रसेन कॉलोनी, दादाबाड़ी, कोटा फोन – (0744) 410818
7. श्री चन्द्रप्रभु दि. जैन मन्दिर, C/o छोटुलाल चित्तेड़ा, बस स्टेण्ड, आयड़, उदयपुर
फोन – 414322, 410934
8. email - Info@Jainkanaknandhi.org

आशीर्वाद

वर्तमान काल बड़ा निकृष्ट है, प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान शून्य होता जा रहा है। ज्ञान बिना व्यक्ति एक प्रकार का अंधा होता है। उसको चम्र–चक्षु तो रहते हैं किन्तु ज्ञान चक्षु नहीं रहते। जीव स्वार्थवश कुछ करना ही नहीं चाहता, दूसरों को सीखाना तो चाहता है लेकिन स्वयं नहीं सीखना चाहता, इसलिये ज्ञान की वृद्धि नहीं होती। पुस्तकीय ज्ञान तो बहुत बढ़ रहा है लेकिन सभ्यता नहीं आ रही है, विनय नहीं आ रही है जिधर देखो उधर अशांति का वातावरण है। ऐसे अशांति के वातावारण में विज्ञान के साथ में धर्म की परम आवश्यकता है और वैसी ही पुस्तकें भी चाहिए। पुस्तकें तो बहुत हैं लेकिन धार्मिक एवं वैज्ञानिकपरक नहीं है। इसलिये हमारे उपाध्याय मुनि कनकनन्दी जी सद्साहित्य का प्रचार हो, इस भावना से पुस्तकें लिख रहे हैं, लोगों में ज्ञान वृद्धि हो, विनय आवे, ऐसा पुरूषार्थ कर रहे है। यह एक सद्पुरूषार्थ है, जीवों का उपकारी है, ज्ञानवृद्धि का कारण है। आपके सामने अच्छा–अच्छा आ रहा है, आपके साहित्य की सब जगह प्रशंसा हो रही है, बहुत अच्छी बात है। महाराज़श्री के साहित्य को सब लोगों को खूब पढ़ना चाहिए। वास्तव में आबालवृद्धों के पढ़ने लायक है। वर्तमान विज्ञान के युग में इस प्रकार के साहित्य की परम आवश्यकता है। वस्तु स्वरूप क्या है, लोगों को मालूम ही नहीं है। उपाध्याय जी के ऐसे साहित्य की बहुत आवश्यकता है। अब आपके सामने एक और पुस्तक आ रही है। पुस्तक का नाम 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' है।

आपको मेरा भी आशीर्वाद है, आप इसी तरह अपने द्रव्य का सदुपयोग सत्साहित्य प्रचार में लगाते रहें ऐसा मेरा आशीर्वाद है। लेखन कार्य में सहयोग करने वाले साधु, साध्वी, बच्चियां, लेक्चरार, प्रोफेसरों को मेरा मंगलमय आशीर्वाद। वे सर्वसत्य धर्म का प्रचार–प्रसार करते हुए पूर्ण सत्य स्वरूप बनें यह मेरी वीर प्रभु से कामना है –

गणधराचार्य कुन्थुसागर

(प्रथम संस्करण से)

लेखन की लेखनी से

लोकोक्ति है कि "क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात"।

इसमें क्षमा, गाम्भीर्य, महानता, उदारता के स्वामी के साथ–साथ क्षुद्रता, क्रूरता आदि के स्वामियों के व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है। जो महान् होते हैं वे क्षमाशील होते हैं, अथवा क्षमाशीलता, व्यक्ति को महान् बना देती है। जो क्षुद्र होते हैं वे सतत क्षुभित रहते हैं, अथवा क्षोभ से व्यक्ति क्षुद्र बन जाता है, क्योंकि व्यक्ति जब क्रोध करता है, तब उसके मन, वचन, कार्य में विशेष परिस्पन्दन होता है, जिससे तीव्र पाप कर्म का बन्धन होता है और उस पाप बन्ध के कारण जीव का अधः पतन होता है। क्रोधी पुरूष का विवेक नष्ट हा जाता है जिससे वे हिताहित करणीय–अकरणीय भूलकर अन्याय, अत्याचार, दुराचार, कलह, युद्ध, नरसंहार आदि कर बैठता है। इतना ही नहीं, क्रोधियों के कोई मित्र नहीं होते और जो मित्र होते हैं वे भी विमुख हो जाते हैं। इसीलिए किसी कवि ने कहा है –

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर न जुड़े, जुड़े गांठ पड़ जाय।।

आचार्यों ने भी कहा – 'कोहो मित्ति विणासणं' क्रोध से मित्रता नष्ट हो जाती है। इतना ही नहीं क्रोध के समय जीवकोशों से एड्रेनेलीन (Adrenaline) नामक एक विषाक्त रसायनिक द्रव्य निकलता है, जिससे तन्त्रिकातंत्र सहित सम्पूर्ण शरीर प्रभावित होता है। उस विषाक्त रस से प्रभावित होकर स्नायविक दुर्बलता, स्मरण शक्ति की क्षीणता, मन्दाग्नि आदि शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोग होते हैं इसकी विशेष जानकारी के लिए मेरे द्वारा लिखित "धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान" पुष्प I, II का विशेष अवलोकन करें। तो भी पाठकों की सामान्य जानकारी के लिए "धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान" से कुछ अंश उदधृत कर रहा हूँ।

"भय से अतिसार रोग हो जाता है। चिन्ता से अपस्मार रोग होता है, डर से धड़कन बढ़ती है, रक्तचाप बढ़ जाता है। तीव्र ईर्ष्या और घृणा से अलसर रोग हो जाता है, आत्म–ग्लानि से क्षय रोग (T.B.) होता है। अति स्त्री सम्भोग से टी. बी., कुष्ट रोग, नपुंसकता आदि रोग हो जाते हैं। चिन्ता, क्रोध, घृणा भाव आदि से मानसिक विकृतियां हो जाती है जिससे मनुष्य को अनेक शारीरिक रोग के साथ–साथ मानसिक रोग, पागलपन आदि हो जाते हैं।"

क्रोध से बुढ़ापा –

गुस्सा, उदासी, चिन्ता, घृणादि भाव हमारी त्वचा पर एक गहरा असर डालती है। जिस समय हमें क्रोध आता है उस समय शरीर में एक ऐसे रस का संचार होने लगता है जो चेहरे की तरफ रक्त का संचार रोकता है, इसके कारण त्वचा का रंग पीला या विवर्ण हो जाता है। अधिक क्रोध आने पर चेहरे पर झुर्रियां जल्दी पड़ जाती है। खुश–सन्तोष रहने पर चेहने पर लाली और चमक होती है। आन्तरिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो जाती है। फलतः पाचन क्रिया भी बिगड़ने

लगती है। इस प्रकार चिन्ता या तनाव से केवल शारीरिक क्षति ही नहीं होती बल्कि हृदय की अन्य–अन्य बीमारियां पैदा हो जाती है। इस प्रकार मानसिक दूषित भाव शरीर के ऊपर, मन के ऊपर, आत्मा के ऊपर, स्वपर के ऊपर दूषित प्रभाव डालता है। इन दूषित भावों से केवल इहलोक नहीं किन्तु परलोक में भी अनेक कष्टों को उठाना पड़ता है।

आधुनिक भौतिक युग में मनुष्य प्राकृतिक आचार–विचार को छोड़कर अप्राकृतिक आचार–विचार, आहार एवं संगति के प्रभाव से, वह स्वयं अप्राकृतिक होता जा रहा है, जिसके कारण वह छोटी–छोटी बातों एवं घटनाओं से मानसिक संतुलन को छोड़कर क्षुब्ध होकर अशांत हो जाता है इससे मांसपेशीय तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये आज मानव भौतिक साधनों से सम्पन्न होते हुए भी अन्तरंग में खोखला होकर अधिक दुखी है। इन तनावों को दूर करने के लिए अभी तक वैज्ञानिक जगत् में भौतिक औषधि का आविष्कार न हुआ है और न आगे भी हो सकता है। परन्तु इन तनावों से दूर होने के लिए हमारे महावैज्ञानिक तीर्थंकर आदि ने अनादि काल से एक अमोघ आध्यात्मिक औषध का शोध एवं बोध करके विश्व के सामने प्रस्तुत किए हैं। वह आध्यात्मिक औषध है 'क्षमा भाव'। मैंने भी आधुनिक मानव को अत्यन्त अशांत देखकर उनके हित के लिए पूर्व मनीषियों द्वारा प्रतिपादित क्षमा धर्म का संकलन इस कृति में किया गया है। इस कृति का नाम है 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'' अर्थात् वीरों के लिए क्षमा भूषण स्वरूप है और अक्षमा दूषण स्वरूप है। नीतिकारों ने कहा भी है –

क्षमा अस्त्र करे यस्य दुर्जनं किं करिष्यति।
अतृणे पतितं वह्नि स्वयमेव उपशम्यति।।

जिसके हस्त में क्षमा रूपी अस्त्र है उसको दुर्जन क्या कर सकता है। अर्थात् पहले तो क्षमावान् का कोई शत्रु नहीं होता है, यदि दैवात् यदि कोई शत्रुता करले तो भी वह शत्रुता एकपक्षीय होने के कारण अधिक समय तक टिक नहीं सकती है। जैसे तृणादि ईंधन से रहित स्थान में गिरी हुई अग्नि ईंधन के अभाव में स्वयमेव शांत हो जाती है। इसलिए एक कवि ने कहा है –

रहिमन जो नर उत्तम प्रकृति क्या करे सतक कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग।।

यहां पर कवि ने चन्दन वृक्ष की सज्जन के साथ एवं विषधर सर्प की खल के साथ तुलना की है। जैसे चन्दन वृक्ष में सर्प लिपटे रहने पर भी चन्दन का वृक्ष विषाक्त नहीं होता है उसी प्रकार जो दुर्जन के व्यवहार से एवं कटु वचन से भी क्षुभित नहीं होता है वही सज्जन क्षमावान पुरूष है। पूर्वाचार्यों ने कहा भी है –

कालुष्य उत्पत्ति संनिधानेपि कालुष्ययानुत्पत्ति क्षमाः।

कलुषता की उत्पत्ति के निमित्त मिलने पर भी मन में विकार भाव रूप कलुषता की उत्पत्ति नहीं होना उत्तम क्षमा है।

परमसमरसभावे स्थितिरूत्तमाक्षमा।

मोह एवं क्षोभ से रहित आत्मा के परम समरस भाव में स्थिर रहना, लीन होना, अवस्थान करना ही उत्तम क्षमा है। इसलिए कहा है "क्षमा तुल्यं तपोनारित" क्षमा के समान अन्य उत्कृष्ट तप नहीं है। क्योंकि –

पुण्यकोटि समस्त्रोतं स्तोत्र कोटि समः जपः।
जपः कोटि समध्यानं ध्यान कोटि समः क्षमा।।

कोटि पुण्य, भगवान को अपर्ण करने पर जो फल मिलता है, वही फल एक स्तोत्र पाठ करने से मिलता है, कोटि स्तोत्र पढ़ने से जो फल मिलता है, वही फल एक जाप से मिलता है, कोटि जाप से जो फल मिलता है, वही फल एक ध्यान से, कोटि ध्यान से जो फल मिलता है, वही एक क्षमा से मिलता है। इसीलिए क्षमावान् व्यक्ति शरीर को केवल कष्ट देने वाला बाह्य तप करने वाले तपस्वी से भी अधिक महान् है। कहा है –

महन्तः सन्ति सर्वऽपि क्षीणकायास्तपस्विनः।
क्षमावन्तमनुख्याता किन्तु विश्वे हि तपसाः।।

तपश्चरण से क्षीण शरीर करने वाले महान् तपस्वी विश्व में अनेक हैं परन्तु वे तपस्वी क्षमावान् पुरूष से कनिष्ट हैं एवं क्षमावान् पुरूष ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ हैं क्योंकि जो केवल बाह्य तपश्चरण करता है, उससे अधिक आत्म–विशुद्ध एवं अधिक कर्म–निर्जरा क्षमावान् की होती है। जैन धर्म में प्रसिद्ध कथानक के अनुसार द्वैपायन मुनि बारह वर्ष तपश्चरण किये थे परन्तु वे सम्पूर्ण 12 वर्ष के फल को केवल एक बार क्रोध से नष्ट करके स्वयं दुर्गति–गामी बने एवं द्वारिका सहित करोडों –अरबों पशु व मनुष्यों को जलाकर भस्म कर दिये। अथ क्रोधाग्नि स्व के साथ–साथ दूसरों को भी जलाती है। कहा भी है –

क्रोध हि शत्रु प्रथमो नराणां देह स्थितो देह विनाशनाय।
यथा स्थितः काष्ठगतोहि वह्नि स एव वह्नदहति च काष्ठम्।।

क्रोध मनुष्य का प्रथम एवं प्रधान शत्रु है क्योंकि यह क्रोधाग्नि देह से उत्पन्न होकर देह में ही संचार करके देह को ही जलाती है । जैसे – काष्ठ से उत्पन्न होने वाली अग्नि कोष्ठ को ही जला देती है। इतना ही नहीं काष्ठ से उत्पन्न अग्नि पहले काष्ठ को जलाती है सम्भव हो तो दूसरों को भी जलाती है। इसी प्रकार क्रोधी क्रोध के कारण स्वयं को कष्ट देता है, सम्भव हो तो दूसरों को भी कष्ट देता है। कदाचित् दूसरों को कष्ट दे या नहीं परन्तु स्वयं को निश्चित रूप से कष्ट देगा ही। जैसे एक व्यक्ति दूसरे के मुख पर कीचड़ लगाने के लिए स्वयं के हाथ में कीचड़ लिया, तब पहले तो स्वयं के हाथ गन्दे होंगे, भले ही दूसरे के मुख पर वह कीचड़ लगा सके या नहीं। यहां पर एक प्रसिद्ध उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ – एक दिन एक व्यक्ति महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी से बोला–"पंडितजी! आप मेरे को जितनी भी गाली देना है दो, पर मैं क्रोध नहीं करूंगा। आपको विश्वास नहीं है तो परीक्षा कर सकते हैं।" पण्डित जी नम्रभाव

से बोले मैं आपकी परीक्षा करने के लिए पहले स्वमुख को गन्दा क्यों करूं? ठीक है। जो क्रोधित होकर दूसरो के लिए अपशब्द का प्रयोग करता है वह स्वयं के मुख को गन्दा नाला ही बना देता है।

महात्मा बुद्ध की प्रसिद्ध एक घटना को प्रस्तुत करता हूँ – एक दिन महात्मा बुद्ध भिक्षा के लिए एक घर में गये। गौतम बुद्ध को देखकर घर के मालिक द्वारा क्रोधित होकर बुद्ध देव को अनेक बुरी–बुरी गाली देने पर भी बुद्ध देव क्रोधित नहीं हुए और शांत भाव से खड़े रहे। तब उस व्यक्ति ने आश्चर्य चकित होकर पूछा! मैंने आपको बहुत गालियां दीं तो भी आप क्रोधित नहीं हुए ? तब महात्मा बुद्ध बोले – "भाई तुम्हारे घर एक अतिथि आया। उसके लिए तुमने कुछ उपहार दिया परन्तु उसने वह उपहार स्वीकार नहीं किया, तो वह उपहार किसके पास रहेगा ? तब वह व्यक्ति कहने लगा मेरे पास।" तब बुद्ध बोले –"तुमने जो मुझे गालियों का उपहार दिया उसमें से मैंने एक भी स्वीकार नहीं की, तो क्रोध क्यों आयेगा ? महात्मा बुद्ध के इस प्रकार गम्भीर–उदार वचन सुनकर उस व्यक्ति ने स्वयं की त्रुटियों को अवगत करके बहुत पश्चाताप किया एवं बुद्ध देव के चरणों में गिरकर क्षमा याचना की। इसी प्रकार जो क्षमावान् होता है वह दूसरों के हृदय को परिवर्तित करके दूसरों को भी क्षमावान् बना सकता है, जैसे शीतल वस्तु (जलादि) उष्ण वस्तु (अग्नि आदि) को शीतल बना सकती है। परन्तु क्रोधी व्यक्ति दूसरों को क्षमा का पाठ नहीं सिखा सकता। जैसे अग्नि दूसरों को शीतलता प्रदान नहीं कर सकती।

इस पुस्तक का संकलन एवं लेखन कार्य का सम्पादन मैंने जैन, बौद्ध, हिन्दू धर्म के साहित्यों के आधार पर किया है। मैं उन महापुरूषों का आभारी हूँ जिनके साहित्य का मैंने उपयोग किया है। इस कृति में कुछ त्रुटि हो उस त्रुटि को सुधार कर विज्ञ पाठकों को सारांश ग्रहण करना चाहिए। मेरा यह प्रयास तब सार्थक होगा जब तक भी विज्ञ पाठक जीवन में क्षमा धर्म को पूर्ण रूप से नहीं तो कम से कम आंशिक रूप से भी अपनायेगा। अखिल जीव–जगत्, क्षमा की छत्रछाया में चिरसुख एवं शांति का अनुभव करें इस शुभ कामनाओं के साथ –

उपाध्याय कनकनन्दी

(प्रथम संस्करण से)

प्रत्यास्मरण

जीव तथा जगत् पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धित है। जीव है तो जगत् है एवं जगत है तो जीव भी है। जीव का कारण ज्ञान एवं कर्म है तो जगत् का कारण भी ज्ञान एवं कर्म दोनों ही है। इन दोनों की समझ का उत्पन्न कर्ता गुरु है। श्री गुरु ही अनुभव यात्रा के कारक है व पथ प्रदर्शक भी। गुरु प्रणेता हैं, मार्गदर्शक हैं, तारक है एवं परित्राणी हैं।

सद्गुरु गणधराचार्य पूज्य श्री कुन्थुसागर जी महाराज मेरे लिए यह सब सिद्ध हुए। मुझे धर्म, दर्शन, आध्यात्म एवं सन्मार्ग का अनुसरण करने तथा श्रवण, मनन व निदिध्यासन करने की प्रेरणा इन्हीं सद्गुरु ने दी। इन्हीं पूज्याचार्य जी के परम शिष्य आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा रचित **"क्षमा वीरस्य भूषणम्"** के इस द्वितीय संस्करण का प्रकाशन मेरे द्वारा किया जाना मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है। क्षमा तत्व का विवेचन एवं सिद्धिकरण आचार्य गुरुदेव द्वारा अत्यन्त सरल किन्तु गूढ़, सटीक किन्तु विशद, सूत्रात्मक किन्तु विस्तृत रुप से किया गया है जो सुग्राह्य एवं अनुपालन योग्य है। इसीलिए मैं यह सद्कार्य करने को प्रेरित हुआ हूँ।

मेरे पूज्य पिता स्व. श्री जीतमल जी नागदा एवं मातुश्री स्व. श्रीमती जगन्नाथी देवी की पावन स्मृति में जगजीत मेमोरियल ट्रस्ट के तत्वाधान में प्रदत्त आर्थिक सहयोग से यह संस्करण प्रकाशित किया जाना पाठकवर्ग को उनके ज्ञानार्जन में सहयोगी होगा। यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है। मेरी सहधर्मिणी सौभाग्यवती पुष्पा द्वारा प्रदत्त संबल, सुपुत्री अभिलाषा, सुपुत्र आशीष एवं अंकुर का सामूहिक सतत् सहयोग एवं केम्प (CAMP) परिवार द्वारा निरन्तर मिलता सहकार इस संस्करण के प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं।

प्रकाशन सहयोग एक किंकर प्रयास है एवं सहृदय आमंत्रण भी। इस पृष्ठ के माध्यम से मेरी सक्षम दान दाताओं से याचना भी है कि सद्ग्रन्थों का प्रकाशन कर यदि हम इनका व्यापक प्रसार करें तो धर्म एवं दर्शन की विशद सेवा होगी।

"आशीर्वाद"

मोहन नागदा
M.Com., ACA, ACS, AICWA, MBA
✆ (0294) 422751, 522006

8, मेहताजी की बाड़ी, गुलाब बाग
उदयपुर – 313 001 (राज.)

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
अध्याय 1	
1. क्षमा वीरस्य भूषणम्	11
2. अनन्तानुबन्धि क्रोध	13
3. अप्रत्याख्यान क्रोध	14
4. प्रत्याख्यान क्रोध	14
5. संज्वलन क्रोध	14
6. स्वपर अन्तर्वाह्य दाहक क्रोधाग्नि	16
7. स्वपर अन्तर्वाह्य दाहक द्वैपायन	17
8. क्रोध का दुष्परिणाम	25
9. क्रोधी तो घाते स्वहित जन	27
10. क्रोध का परिणाम स्वजन मरण	27
अध्याय 2	
1. क्षमाभाव : मोक्ष भाव	29
2. निंदक ही निंदा का भागी	30
3. शत्रु के प्रति क्षमा एवं करुणा	30
4. क्रोध मत कर	33
5. क्या करें शतक कुसंग	35
6. क्षमा के लिए भावना	35
7. क्षमादान	35
8. महात्मा गाँधी की सहनशीलता	36
9. कटु वचन को क्षमा	36
10. क्षमा की विजय	36
11. क्रोध पर प्रेम की विजय	37
12. क्षमावीर महावीर	39
13. अक्षमा भाव का फल	41
14. क्रोध ही चाण्डाल,	43
15. क्रोध कराये अविचारित कार्य	43
16. क्रोध त्याग	45
17. शत्रु के ऊपर क्रोध नहीं कर्म के ऊपर क्रोध	48
18. कुत्ता को नहीं काटा जाता	50
19. गाली देकर मुख गंदा नहीं करना	52
20. क्षमा के लिए साहस चाहिए सहायक नहीं	53
21. क्षमा भाव से ज्ञान लाभ	54
22. क्षमा वीर को शुलपाणि ने पुष्पांजली से पूजा	54
23. मुक्तवीर का बंधन में भी क्षमाभाव	55
24. महामना मालवीयजी की क्षमा	57
25. क्षमा ही आभूषण है	58
26. क्षमा करोड़ों ध्यान के समान है	58
27. शान्तात्मा का लक्षण	58
अध्याय 3	
1. क्षमा से कर्म क्षय होते है	59
2. तपस्वियों का रुप क्षमा है	59
3. क्षमावान ही सन्त	60
4. मरणशील दुनिया में समता	61
5. वह क्रोध को पी गया	62
6. क्षमावान गजकुमार	65
7. उपसर्ग विजयी पांडव	67
8. क्षमा से कर्मक्षय	67
9. हिन्दू धर्म में वर्णित क्षमा	69
10. तेज और क्षमा के अवसर	71
11. युधिष्ठिर के द्वारा क्रोध की निन्दा और क्षमा की प्रशंसा	75
12. क्षमा की शक्ति – 1	83
13. क्षमा की शक्ति – 2	84
14. बौद्ध धर्म में वर्णित क्षमा	86
15. अक्षमा से राक्षस क्षमा से सिद्ध	87
16. शत्रु के लिए शस्त्र	89
17. विवाद से हानि	91
18. अंगुलियों का झगड़ा	92
19. वैर से वैर शांत नहीं होता	93
20. किसके कलह शांत होते है	94
21. वैर के शांत होने का उपाय	94
22. संघ में एकता सुखदायक है	95
23. हम अवैरी होकर सुखी है	95
24. क्षमाभाव एवं संगठन में शक्ति	96
अध्याय 4	
1. तोड़ो नहीं जोड़ो	100
2. अक्षमाभावी (विरक्त) के लक्षण	108
3. क्षमाभावी (अनुरक्त) के लक्षण	109
4. क्षमा के अमृतकण	109
5. मेरी भावना	111

अध्याय 1

क्षमा वीरस्य भूषणम्

(उत्तम क्षमा)

प्रत्येक आत्मा शुद्व स्वरूप में अनन्त समता एवं शान्त स्वरूप है। जिस प्रकार आलोड़न विलोड़न से सहित प्रशांत सागर, स्थिर क्षोभ रहित होता है उसी प्रकार मोह एवं क्षोभ से रहित आत्मा भी धीर, गम्भीर, उदार, प्रशांत एवं समता स्वरूप होता है। परन्तु वायु आदि से तडित होकर समुद्र जैसे अल्लोल–कल्लोल रूप में तरंगायित होकर क्षोभित हो जाता है, उसी प्रकार अन्तरंग क्रोध कषाय एवं बहिरंग, मारन, ताड़ज, निन्दा, गाली, अपमान आदि से प्रताडित होकर आत्मा भी शान्त–प्रशान्त क्षमाभाव, मानसिक भावात्मक साम्यभाव को खोकर क्षोभित हो उठता है। अपना शुद्व–विशुद्ध प्रशान्त स्वरूप आत्म स्वभाव को खो बैठता है। आत्मा में वैभाविक अशुद्ध परिणमन होता है। यह अशुद्ध परिणमन ही अधर्म, पाप कर्मबन्ध के कारण, दुःख के बीज है। स्वाभाविक परिणमन ही धर्म एवं सुख शांति का आधार है।

अन्तरंग–बहिरंग क्रोध उत्पादक अनेक कारणों के निमित्ति मिलने पर भी समता एवं प्रशांत स्वरूप आत्मस्वभाव से पदच्युत नहीं होना क्षमा है। सम्यक्दर्शन (भावना), सम्यक्ज्ञान (यथार्थ ज्ञान), सहित क्षोभित नहीं होना, क्रोधित नहीं होना, उत्तम क्षमा है। किसी प्रकार निहित–संकुचित, स्वार्थ भावना से, दुर्बलता से, प्रतिशोध की भावना, अन्तरंग में रखते हुए मिथ्या श्रद्धा एवं मिथ्या ज्ञान सहित दूसरों को क्षमा करना यथार्थ क्षमा नहीं है। जिस प्रकार पृथ्वी को खोदने पर, ताड़न करने पर, कर्षण करने पर पृथ्वी, किसी प्रकार का प्रतिकार नहीं करते हुए समता से सहन करती है, उसी प्रकार दूसरों से ताड़न, मारन, गाली, निन्दा, अपमान आदि प्राप्त होने पर भी जो अन्तरंग समता भाव से आत्मविशुद्धि से, कर्म निर्जरा के लिए क्षोभित हुए बिना, शांत भाव से सहन करता है उसे क्षमा कहते हैं। क्षमा अर्थात् पृथ्वी जिस प्रकार समता भाव से सहन करती है उसी प्रकार सहन करना क्षमा है। क्ष (क्षोभित) मा (नहीं) अर्थात क्षोभित नहीं होना क्षमा है। जिस प्रकार छोटे बच्चे अज्ञानता एवं प्रमाद के कारण बाल्यावस्था की जड़ता एवं चंचलता के कारण शोच, पेशाब, माँ–बाप के अंगोपांग के ऊपर करने पर माँ बाप बच्चों को ताड़न आदि नहीं करते एवं अपना अंगोपांग काट कर नहीं फेंकते है, उसी प्रकार कोई जीव अज्ञान, प्रमाद, कषाय या पूर्व कर्म की प्रेरणा से गाली गालौंच अथवा कष्ट देने पर साधु सज्जन, कर्म से, संसार से भयभीत मुमुक्षु, क्षोभित होकर दूसरों को कष्ट नहीं देते है। जैसे अपना अंगोपांग, घाव रोगादि के कारण स्वयं को कष्ट देने पर भी उस अंग को ताड़न मारन से कष्ट नहीं देते हैं उसी प्रकार साधु–विवेकी पुरूष दूसरों को कष्ट नहीं देते है। उपनिषद् में कहा है:–

रिपौ बुद्धे स्वदेहे च समैकात्म प्रपश्यता।
विवेकिनः कुतः कोपः स्वदेहावयवेस्विव।।

शत्रु तथा सांसारिक बंधन युक्त शरीर में जो एक भाव देखने वाला ज्ञानशील होता है उसे किसी पर भी क्रोध नहीं आता, जैसे कि मनुष्य को स्व अवयवों पर, हाथ पांव आदि पर क्रोध नहीं आता।

अज्ञानी जीव का अज्ञानता के कारण अनैतिक आचरण करना सहज, सरल है। परन्तु, ज्ञानी होकर अज्ञानियों के असत् व्यवहार से अज्ञानी के समान असत् व्यवहार नहीं करते हैं। यदि वे भी अज्ञानी के समान व्यवहार करेंगे तो ज्ञानी और अज्ञानी में कोई अन्तर ही नहीं रहेगा।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है–

अक्कोसेज्ज परो भिक्खु,न तेसिं पडिसंजले।
सरिसो होइ वालाणं तम्हा भिक्खु न संजले।।

यदि कोई भिक्षु को गाली दे, तो वह उसके प्रति क्रोध न करें। क्रोध करनेवाला अज्ञानियों के सदृश होता है। अतः भिक्षु आक्रोश काल में संज्वलित न हो, उबाल न खाये।

सोच्चाणं फरूसा भासा, दारूणा गाम–कण्टगा।
तुसिणीओ उवेहेज्जा न ताओ मणसीकरे।।

दारूण (असह्य) ग्रामकण्टक–कांटे की तरह चुभनेवाली कठोर भाषा को सुनकर भिक्षु मौन रहें, उपेक्षा करें, उसे मन में भी न लाए।

हओ न संजले भिक्खु, मणंमिन पओसए।
तितिक्खं परमं नच्चा भिक्खु धम्मं विचिंतए।।

मारे–पीटे जाने पर भी भिक्षु क्रोध न करे। और तो क्या, दुर्भावना से मन को भी दूषित न करें। तितिक्षा–क्षमा को साधना का श्रेष्ठ अंग जानकर मुनिधर्म का चिन्तन करें।

समणं संजयं दन्तं, हणेज्जा कोई कत्थई।
जत्थि जीवस्स नात्ति एवं पेहेज्ज संजए।।

संयत और दान्त–इन्द्रियजयी श्रमण को यदि कोई कहीं मारे–पीटे तो उसे यह चिन्तन करना चाहिए कि आत्मा का नाश नहीं होता है।

वस्तुतः आत्मा अजर–अमर अविनाशी शाश्वत होने से आत्मा को विश्व की कोई भी प्रचंड से प्रचड शक्ति भी नाश नहीं कर करती है। परन्तु जब स्वयं आत्मा क्रोध–कषाय से वशीभूत होकर अक्षमा भाव के वशीभूत हो जाता है तब स्वयं ही स्वयं का घात करता है। इसलिए क्रोध ही परम शत्रु होने से क्रोध के

ऊपर ही क्रोध करना चाहिए जिससे पुनः क्रोध रूपी शत्रु स्वयं में प्रवेश न हो।

उपनिषद् के ब्रह्म विद्या खंड में ऋषियों ने कहा है:–

अपकारिणी कोपश्चेत्कोपे कोपः कथं न ते।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसह्य परिपन्थिन।।

यदि निरपराध पर कोई क्रोध करता है, तो उस भले आदमी से पूछना चाहिये कि क्रोध पर ही तुम क्रोध क्यों नहीं करते जो सभी का मूल कारण है, साथ ही जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का जबरदस्त वैरी है।

नमोऽस्तु मम कोपाय स्वाश्रयज्वालिने भृशम् ।
कोपस्य मम वैराग्यदायिने दोषबोधिते ।।

अपने आधार को ही भस्म कर देने वाले क्रोध को मेरा नमस्कार है। मुझे वैराग्य देनेवाले तथा दोषों का ज्ञान कराने वाले को बार बार नमस्कार है।

अग्नि जिस प्रकार जिस ईंधन से पैदा होती है उस ईंधन को ही जलाकर राख कर देती है, उसी प्रकार क्रोध रूपी अग्नि आत्मा से उत्पन्न होकर आत्मा को ही पहले जला देती है।

सामान्यतः क्रोध एक प्रकार होने पर भी उसे चार, सोलह, संख्यात असंख्यात आदि उत्तरोत्तर अनेक भेद–प्रभेद है। जैनागम में मुख्यतः (1) अनन्तानुबन्धि क्रोध, (2) अप्रत्याख्यान क्रोध, (3) प्रत्याख्यान क्रोध, (4) संज्जवलन क्रोध के भेद से चार भेद है। क्रोध की शक्ति एवं अवधि को लेकर उपरोक्त भेद किया गया है। चार प्रकार के क्रोधों का वर्णन निम्न प्रकार है:–

अनन्तानुबन्धि क्रोध

जिस क्रोध के उदय से जीव, एक वर्ष, दो वर्ष, संख्यात–असंख्यात वर्ष, इहभव–परभव तक क्रोध का संस्कार नहीं छोड़ता है उसको अनन्तानुबन्धि क्रोध कहते है। एक बार वैरत्व होने से वह वैरत्व तत्काल नहीं मिटता है। वह वैरत्व रूपी संस्कार अनेक भव तक चलता रहता है। जिस प्रकार शिला के ऊपर उत्कीर्ण हुई रेखा चिरकाल तक स्थायी रहती है, शीघ्रता से नहीं मिटती है उसी प्रकार जो क्रोध या वैरत्व रूपी रेखा शिला की रेखा के समान शीघ्रता से नहीं मिटती है, उसी प्रकार जो क्रोध या वैरत्व रूपी रेखा शिला की रेखा के समान शीघ्रता से नहीं मिटती है, भव–भवान्तर तक यथावत् अमिट रहती है उसको अनन्तानुबंधि क्रोध कहते हैं। यह क्रोध बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि को होता है। इस प्रकार क्रोध के उदय से दृष्टिकोण कभी भी सम्यक् नहीं हो सकता है। यह क्रोध आत्मा को अनेक भव तक कष्ट देता है। पूर्वभव में पार्श्वनाथ भगवान के भाई कमठ का जो क्रोध पार्श्वनाथ के ऊपर था वह अनन्तानुबंधि क्रोध है। यह क्रोध जीव को तद्भव में (भावी) नारकी बना देता है एवं परभव में भी नरकगति में लेकर जाकर जीव को अनन्त दुःख प्रदान करता है, अर्थात

अनन्तानुबंधि क्रोध से जीव मरकर नारकी होते है। अनन्तानुबंधि क्रोध, सम्यग् दर्शन के साथ–साथ सम्यक् चारित्र को भी धात करता है।

अप्रत्याख्यान क्रोध

अप्रत्याख्यान क्रोध के उदय से जीव संयम को धारण नहीं कर सकता है। यह क्रोध अनन्तानुबंधि क्रोध से कुछ क्षीण शक्ति वाला है। पृथ्वी के ऊपर रेखा खीचनें पर जैसे वह रेखा पत्थर की रेखा के समान अधिक दीर्घकाल स्थायी नहीं होने पर भी कुछ समय तक स्थिर रहती है, उसी प्रकार अप्रत्याख्यान क्रोध के उदय से जीव अनन्तानुबन्धि क्रोधी के समान अनन्तकाल तक क्रोध के संस्कार अन्तरंग में धारण नहीं करने पर भी उसका संस्कार छह महीना तक रह सकता है। मान लीजिये अप्रत्याख्यान कषाय सहित जीव का किसी के साथ कोई प्रकार का झगड़ा, वैमनस्य, वैरत्व होने पर उसका संस्कार अधिक से अधिक छह महिने तक स्थिर हो सकता है। यदि छह महिने से अधिक काल तक वह संस्कार रहेगा तब अप्रत्याख्यान क्रोध न रहकर अनन्तानुबंधि क्रोध रूप परिणमन कर लेगा। अनन्तानुबन्धि रूप परिणमन करने से वह जीव सम्यक्तव से च्युत होकर मिथ्यात्व अवस्था में जा गिरेगा।

प्रत्याख्यान क्रोध

प्रत्याख्यान क्रोध के उदय से जीव सकल संयम को धारण करके मुनि–चारित्र का पालन नहीं कर सकता है। परन्तु वह देश संयम को धारण करके श्रावक होकर आदर्श गृहस्थ धर्म–पालन कर सकता है। इस क्रोध की शक्ति अप्रत्याख्यान क्रोध की शक्ति से क्षीण है। धूली के ऊपर रेखा खींचने पर जैसे वह रेखा पूवोक्त शीला रेखा या भूमि रेखा के समान दीर्घस्थायी नहीं होती है उसी प्रकार प्रत्याख्यान क्रोध का संस्कार पूर्वोक्त क्रोध जनित संस्कार के समान दीर्घ स्थायी नही हो सकता है। प्रत्याख्यान क्रोध के उदय सहित जीव यदि किसी के साथ क्रोध के कारण वैरत्व से कलह आदि करता है तो उसका संस्कार अधिक से अधिक पन्द्रह दिन रह सकता है। उसके उपरान्त उस वैरत्व सम्बंधी सम्पूर्ण संस्कार विलीन हो जाते हैं। वह 15 दिन के पहले, अवैरत्व अवस्था में जैसे विरोधी के साथ समता भाव धारण किया था उसी प्रकार धारण कर लेता है। 15 दिन के बाद भी यदि उस वैरत्व सम्बंधी संस्कार कुछ अंश में भी अवशेष रह गया तो वह अपना उच्चतम आध्यात्मिक सोपान से नीचे आ गिरता है। यदि क्रोध का संस्कार 15 दिन से अधिक हो जाता है तब प्रत्याख्यान क्रोध परिवर्तित होकर, अप्रत्याख्यान आदि रूप परिणमन कर लेता है।

संज्वलन क्रोध

इस के उदय से जीव यथाख्यात चारित्र को प्राप्त नहीं कर सकता है परन्तु सकल संयम धारण करके मुनि–चारित्र पालन कर सकता है। संयम के साथ जो क्रोध प्रज्जवलित होता है उस क्रोध को संज्वलन क्रोध कहते हैं। इस क्रोध के उदय से मुनि कदाचित् क्रोधावेश हो सकते है, परन्तु उस क्रोध का

आवेश अत्यन्त मंद एवं जल रेखा के समान अचिरस्थायी होता है। जैसे– जल के ऊपर रेखा खींचने से वह रेखा अधिक समय स्थिर नहीं रहती है परन्तु आगे–आगे रेखा खींचने पर पीछे–पीछे की रेखा मिटती जाती है। कारणवशंतः कभी इस क्रोध का उदय रूपी संस्कार होने से अधिक से अधिक अन्तःमुहर्त रहता है यदि संस्कार अन्तःर्मुहर्त से अधिक रह जायेगा तब मुनि स्वयं ही उच्चतम आध्यात्मिक पद से च्युत होकर अधस्तनः भूमिका में गिर जायेगा।

उपरोक्त चारों प्रकार की क्रोधाग्नि आत्मा को निर्मम रूप से जलाती है। उपरोक्त क्रोधाग्नि को उपशमन करते हुए अक्रोध भाव का नाश करना क्षमा धर्म है। आत्म–हितकांक्षी मुमुक्षु जीव विपरीत परिस्थितियों में भी समता भाव को नहीं छोडते हुए विपरीत परिस्थितियों को समता भाव से सहन कर लेते हैं। ऐसी परिस्थिति ही परोक्षा का समय है। परीक्षा के अवसर पर त्रुटि करने से अनुर्त्तीण होना अवश्यम्भावी है इसलिये परीक्षा के समय में अत्यन्त सतर्क होना आवश्यक है, अनिवार्य हैं। उस परीक्षा के क्षण में जीव परीक्षित होकर शुद्ध हो जाता है। एक कवि ने कहा है:–

धृष्टं धृष्टं पुनरपिपुनः चन्दनं चारु गन्धम्।
छिन्नं–छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादं चैव इक्षुदण्डम्।
दग्धं–दंग्ध पुनरपिपुनः कंचनं कान्तवर्णम्।
न प्राणान्ते प्रकृतिविकृति र्जायते चोत्तमानाम्।

चन्दन को जितना धर्षण किया जाता है उतना ही चन्दन अधिक सुगन्ध प्रदान करता है। गन्ना को जितना पेला जाता है उतना ही स्वादभरित रस प्रदान करता है। सुवर्ण को जितना दग्ध (जलाया) किया जाता है उतना सुवर्ण कांतकमनीय होकर प्रकाशमान हो जाता है उसी प्रकार साधु–सज्जन धर्मात्मा व्यक्ति जितना ही उपसर्ग, कष्ट, ताड़न, मारन गाली गलौच रूपी अग्नि से सन्तप्त होता है वह उतना ही शुद्ध, निर्मल, पवित्र होकर आध्यात्मिक ज्योति से चमक उठता है। उसका प्राणान्त होने पर भी प्राण से भी प्रिय ज्येष्ठ श्रेष्ठ धर्म को त्याग नहीं करता है। वह प्रिय धर्मी एवं दृढ़ धर्मी होता है।

अभी तक जितने महापुरूष हुए है वें समस्त महापुरूष समस्त प्रतिकूल अवस्थाओं में अपना तेज, वीर्य, साहस, धैर्य समभाव से अतिक्रम करते हुए अपना उच्चतम लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त करते है। जो प्रतिकूल अवस्था से पराभूत हुए हैं वे अपने लक्ष्य के चरम बिन्दु को प्राप्त नहीं कर पाये, मोक्ष जीव के लिये तीन काल में, तीन लोक में अत्यन्त उच्चतम लक्ष्यबिन्दु है उस लक्ष्यबिन्दु को प्राप्त करने के लिये समस्त प्रतिकूल परिस्थितियों को अतिक्रम करते हुए मुमुक्षु को कदम–कदम पर आगे बढ़ते जाना चाहिये।

कोहेण जो ण तप्पदि सुर–णर–तिरिएहि रिमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे तस्स खमा णिम्मला होदि।।

देव, मनुष्य और तिर्यञ्चों के द्वारा घोर उपसर्ग किये जाने पर भी जो मुनि क्रोध से संतप्त नहीं होता, उसके निर्मल क्षमा होती है।

घोर उपसर्ग आने पर भी जो क्षमा भाव से विचलित नहीं होते, वही उत्तम क्षमा के धारी होते हैं। आशय यह है कि मुनिजन शरीर को बनाये रखने के लिए आहार की खोज में गृहस्थों के घर जाते हैं। उस समय दृष्ट मनुष्य उन्हें देखकर हंसते है, गाली बकते है, अपमान करते है, मारपीट करते है। किन्तु क्रोध उत्पन्न होने के इन सब कारणों के होते हुए भी मन में जरा भी कलुषता का न आना उत्तमक्षमा है। ऐसे समय मे मुनि को उत्तमक्षमा धर्म की अच्छाई और क्रोध की बुराईयों का विचार करना चाहिए। उत्तम क्षमा व्रत और शील की रक्षा करनेवाली है, इस लोक परलोक में दुखों से बचाती है, उत्तम क्षमाशील मनुष्य का सब लोग सन्मान करते हैं। इसके विपरीत क्रोध, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का नाशक है। ऐसा सोचकर मुनि को क्षमाधारण करना चाहिये। तथा यदि कोई मनुष्य अपशब्द कहता है तो उस समय यह विचारना चाहिये कि ये मनुष्य मुझमें जो दोष बतलाता है वे दोष मुझमें है या नहीं? यदि है तो वह झूठ क्या कहता है और यदि नहीं है तो यह अज्ञान से ऐसा कहता है, यह सोचकर उसे क्षमा कर देना चाहिये। और भी यदि कोई पीठ पीछे गाली देता हो तो विचारना चाहिये कि मूर्खो का स्वभाव गाली बकने का होता ही है। वह तो मुझे पीठ पीछे ही गाली देता है, मूर्ख लोग तो मुँहपर भी गाली बकते है। अतः वह क्षमा के योग्य है। यदि कोई मुँह पर ही अपशब्द कहे तो विचारना चाहिये कि चलो, यह गाली ही बककर रह जाता है, मारता तो नहीं है। मूर्ख लोग तो मार भी देते हैं, अतः वह क्षम्य है। यदि कोई मारने लगे तो विचारे, यह तो मुझे मारता ही है, प्राण तो नहीं लेता। मुर्ख जोग तो प्राण तक ले डालते है। अतः क्षम्य है यदि कोई जान लेने लगे तो विचारे यह मेरी जान ही तो लेता है, धर्म तो भ्रष्ट नहीं करता । फिर भी यह सब मेरे ही पूर्व किये हुए कर्मो का फल है, दूसरा मनुष्य तो केवल इसमें निमित्त मात्र है अतः इसको सहना ही चाहिये।

स्वपर अन्तर्वाह्य दाहक क्रोधाग्नि

दृग्बोधादिगुणानर्धरत्न प्रचयसंचितम्।
भाण्डागारं दहत्येव क्रोधवह्निः समुत्थितः।।39।।

(ज्ञानार्वाव पृ. 310)

क्रोधरूपी अग्नि आविर्भूत होकर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान आदि गुणोंरुप अमूल्य रत्नों के समूह से संचित भण्डार (खजाना) को निश्चय से ही जला डालती है।

संयमोत्तमपीयूषं सर्वाभिमतसिद्धिदम्।
कषायविषसेकोऽयं निःसारीकुरुते क्षणात्।। 40।।

वह कषायरूप विष का सिंचन समस्त प्राणियों के अभीष्ट को सिद्ध करनेवाले संयमरूप उत्तम अमृत को क्षणभर में ही व्यर्थ कर देता है। तात्पर्य यह है कि कषाय के साथ धारण किया गया संयम प्राणी के हित को कभी सिद्ध नहीं कर सकता है।

तपः श्रुतयमाधारं वृत्तविज्ञानवर्धितम्।
भस्मीभवति रोषेण पुं सां धर्मात्मकं वपुः।।41।।

तप शास्त्र और संयम को आधारभूत जो पुरूषों का धर्ममय शरीर चारित्र एवं ज्ञान से वृद्धि को प्राप्त हुआ है उसे क्रोध भस्म कर डालता है।

अथं समुत्थितः क्रोधो धर्मसारं सुरक्षितम् ।
निर्दहत्येव नि'शंक शुष्कारण्य मिवानलः ।।42।।

जिस प्रकार अग्नि सूखे वन को निश्चिय ही भस्म कर देती है उसी प्रकार उत्पन्न हुआ यह क्रोध अतिशय संरक्षित धर्मरूप धन को नियम से भस्म कर देता है।

पूर्वमात्मानमेवासौ क्रोधान्धों दहति ध्रुवम्।
पश्चादन्यान् न वा लोको विवेकविकलाशयः।। 43 ।।

क्रोध में अंधा हुआ प्राणी विवेक से रहित होकर पूर्व में निश्चय से अपने आपको ही जलाता है – स्वयं सन्तप्त होता है। तत्पश्चात् वह अन्य प्राणियों को जलाता है और कदाचित् नहीं भी जलाता है।

कुर्वन्ति यतयोऽप्यत्र क्रुद्धास्तत्कर्म निन्दितम्।
हत्वा लोकद्वयं येन विशन्ति धरणीतलम्।। 44 ।।

अन्य मनुष्यों की तो बात ही क्या है, किन्तु मुनिजन भी क्रोध को प्राप्त होकर ऐसे निन्दित कार्य को करते है कि जिसके आश्रय से वे अपने दोनों लोकों को नष्ट करके पृथ्वीतल में प्रविष्ट होते है– नरक में नारकी उत्पन्न होते है।

क्रोधाद् द्वीपायनेनापि कृतं कर्मातिगर्हितम्।
दग्धा द्वारवती नाम पूः स्वर्गनगरीनिभा।। 45।।

क्रोध के वशीभूत होकर द्वीपायन मुनि ने भी स्वर्गपुरी के सदृश द्वारिकापुरी को जलाकर अतिशय निन्दित कार्य किया है।

स्वपर अन्तर्वाह्य दाहक–द्वैपायन–

तदनन्तर देव और मनुष्यों से पूजित भगवान नेमिजिनेन्द्र ने भव्य जीवों के समूह को प्रबोधित करते हुए नाना देशों में बड़े वैभव के साथ विहार किया। उन्होंने उत्तरदिशा के, मध्यदेश के तथा पूर्वदिशा के प्रजा से युक्त अनेक बड़े–बड़े राजाओं को धर्म में स्थिर करते हुए विहार किया था। चिरकाल तक विहार कर भगवान् पुनः आये और रैवतक (गिरनार) पर्वत पर समवसरण को सुशोभित करते हुए विराजमान हो गये। प्रबल तेज को धारण वाले इन्द्र वहाँ विराजमान जिनेन्द्र भगवान के पास आये और नमस्कार तथा स्तुति कर अपने अपने स्थानों पर बैठ गये।

अन्तःपुर की रानियों, मित्रजन, द्वारिका की प्रजा तथा प्रद्युम्न आदि पुत्रों से सहित वसुदेव, बलदेव तथा कृष्ण भी बड़ी विभूति के साथ आये और भगवान् नेमिनाथ को नमस्कार कर समवसरण में यथास्थान बठकर भगवान् से धर्मश्रवण करने लगे। तदनन्तर धर्मकथा के बाद जिनेन्द्रभगवान् को नमस्कार कर बलदेव ने हाथ जोड़ ललाट से लगा अपने हृदय में स्थित बात पूछी। उन्होंने पूछा कि हे भगवन्! यह द्वारिकापुरी कुबेर के द्वारा रची गयी है सो इसका अन्त कितने समय में होगा क्योंकि कृत्रिम वस्तुएं अवश्य ही नश्वर होती है। यह द्वारिकापुरी कालान्तर में क्या अपने आप ही समुद्र में डुब जावेगी अथवा निमित्तान्तर से सन्निधान में किसी अन्य अन्य निमित्त से विनाश को प्राप्त होगी? कृष्ण के अपने अन्तकाल में निमित्तपने को कौन प्राप्त होगा? क्योंकि उत्पन्न हुए समस्त जीवों को मरण निश्चित है। है प्रभो! मेरा चित्त कृष्ण के स्नेहरूपी महापाश में बंधा हुआ है अतः मुझे संयम को प्राप्ति कितने समय बाद होगी? इस प्रकार बलदेव के पूछने पर समस्त चराचर पदार्थों को देखनेवाले नेमि जिनेन्द्र प्रश्न के अनुसार बात कहने लगे, सो ठीक है क्योंकि भगवान् प्रश्नों का उत्तर निरूपण करने वाले ही थे।

उन्होने कहा कि है राम! यह पुरी बारहवें वर्ष में मदिरा के निमित्त से द्वैपायन मुनि द्वारा क्रोधवश भस्म होगी। अन्तिम समय में श्रीकृष्ण कौशाम्बी के वन में शयन करेगे और जरत्कुमार उनके विनाश में कारणपने को प्राप्त होगा। अन्तरंग कारण के रहते हुए परिणतिवश बाह्य हेतु जगत के अभ्युदय तथा क्षय में कारण होते है। इसलिये वस्तु के स्वभाव को जाननेवाले उत्तम मनुष्य अभ्युदय तथा क्षय के समय पृथ्वीपर कभी हर्ष और विषाद को प्राप्त नहीं होते।

संसार के मार्ग से भयभीत रहनेवाले आपको भी उसी समय कृष्ण की मृत्यु का निमित्त पाकर तप की प्राप्ति होगी तथा तपकर आप ब्रह्मस्वर्ग में उत्पन्न होगें। द्वैपायन कुमार, रोहिणी का भाई बलदेव का मामा था सो उस समय भगवान् के वचन सुनकर वह संसार से विरक्त हो मुनि होकर तप करने लगा। वह बारह वर्ष की अवधि को पूर्ण करने के लिये यहाँ से पूर्व देश की ओर चला गया और वहाँ कषाय तथा शरीर को सुखाने वाला तप करने लगा। मेरे निमित्त से कृष्ण की मृत्यु होगी यह जानकर जरत्कुमार भी बहुत दुखी हुआ और दुख से युक्त भाई बंधुओं को छोडकर वह कही ऐसी जगह अकेला रहने लगा जहाँ कृष्ण दिखाई न दे। जब जरत्कुमार वन में जाकर अकेला रहने लगा तब स्नेह से आकुल श्रीकृष्ण ने अपने-आपमें अपने-आपको सूना अनुभव किया। जो कृष्ण को प्राणों के समान प्यारा था ऐसा जरत्कुमार कहीं प्रिय प्राणों को छोडने की इच्छा से अकेला ही मृगों के समान निर्जन वन में भ्रमण करनेलगा। इधर आगामी दुख की भार की चिन्ता से जिनके मन संतप्त हो रहे थे ऐसे यादव लोग भगवान् को नमस्कार कर नगरी में प्रविष्ट हुए। बलदेव के साथ श्रीकृष्ण ने नगर में यह घोषणा करा दी कि मद्य बनाने वाले के साधन और मद्य शीघ्र ही अलग कर दिये जायें। घोषणा सुनते ही मद्यपायी लोगों ने पिण्ट, किण्व आदि मदिरा बनाने के साधनों के साथ साथ समस्त मदिरा को शिलाओं के बीच बने हुए कुण्ड में युक्त कादम्बगिरी की गुहा में फेंक दिया। कदम्ब

वन के कुण्डों में जो मदिरा छोडी गयी थी वह अश्मपाक विशेष के कारण उन कुण्डों में भरी रही। हित की इच्छा रखने वाले कृष्ण ने समस्त स्त्री पुरूषों के सुनते समय द्वारिकापुरी में दूसरी घोषणा की कि यदि मेरे पिता, माता, पुत्री अथवा अन्तःपुर की स्त्री चाहे तो मै उन्हें मना नहीं करता हूँ – उन्हे तप करने की मेरी और से पूर्ण छूट है। घोषणा सूनते ही प्रद्युम्नकुमार तथा भानुकुमार आदि को लेकर चरमशरीरी कुमार और अन्य बहुत से लोग परिग्रह का त्याग कर तपोवन को चले गये। रूक्मिणी और सत्यभामा आठ पटरानियों ने भी आज्ञा प्राप्त कर पुत्र वधुओं तथा अन्य सौतों के साथ दीक्षा धारण कर ली। सिद्वार्थ नाम का सारथि जो बलदेव का भाई था, जब दीक्षा लेने के लिए उत्सुक हुआ तब बलदेव ने उससे याचना कि कदाचित् मैं मोहजन्य व्यसन को प्राप्त होऊँ तो मुझे सम्बोधित करना। बलदेव की इस प्राथना को स्वीकृत कर उसने तप ग्रहण कर लिया।

तदनन्तर जो भव्यरूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य के समान थे ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र, भव्य जीवों को सम्बोधन के लिए बड़े भारी संघ के साथ पल्लव देश को प्राप्त हुए। उस समय जो राजा–रानियों और मनुष्यों का समूह दीक्षित हुआ था वह जिनेन्द्र भगवान् के साथ ही साथ उत्तरापथ की ओर चलने के लिए उद्यमी हुआ। द्वारिका के लोग द्वारिका से बाहर जाकर बारह वर्ष तक कही बन में रहते आये परन्तु भाग्य की प्रबलता से वे वहाँ निवास कर फिर वहीं वापस आ गये। इधर द्वारिका में जो लोग रहते थे वे परलोक के भय से युक्त हो, व्रत, उपवास तथा पूजा आदि सत्कार्यो में निरन्तर संलग्न रहते थे। तदनन्तर बहुत भारी तप से युक्त जो द्वैपायन मुनि थे, वे भी भ्रान्तिवंश बारहवे वर्ष व्यतीत हुए मानत हुए बारहवे वर्ष में वहाँ आ पहुंचे। "जिनेन्द्र भगवान का अदेश पूरा हो चूका है" यह विचार कर जिनकी बुद्धि विमूढ़ हो रही थी तथा जो सभ्य दर्शन से दुर्बल थे ऐसे द्वैपायन मुनि बारहवे वर्ष में वही आ पहुँचे। वे किसी समय द्वारिका के बाहर पर्वत के निकट, मार्ग में आतापन योग धारण कर प्रतिमायोग से विराजमान थे। उसी समय वनक्रीडा से थके एवं प्यास से पीड़ित शव आदि कुमारों ने कदम्ब वन के कुण्डों में स्थित उस शराब को पी लिया। कदम्ब वन में छोडी एवं कदम्ब रूप में उबरों के रूप में स्थित उस मदिरा को पीकर वे सब कुमार विकार भाव को प्राप्त हो गये। वह मदिरा पुरानी थी तथा परिपाक के वश से उसने तरूण स्त्री के समान, लाल–लाल नेत्रों को धारण करने वाले सब तरूण कुमारों को अत्याधिक वशीभूत कर लिया। फलस्वरूप वे सब कुमार असम्बद्ध गाने लगे, लड़खड़ाते पैरों से नाचने लगे, उनके केश बिखर गए, आभूषण अस्त–व्यस्त हो गये और उन्होंने अपने कंठों में जंगली फुलों की मालाएँ पहन ली। जब व सब नगर की ओर आ रहे थे तब उन्होंने सूर्य के सम्मुख खडे हुए द्वैपायन मुनि को पहिचान लिया। पहंचानते ही उनके नेत्र घूमने लगे। उन्होंने आपस में कहा कि यह वही द्वैपायन योगी है जो द्वारिका का नाश करनेवाला होगा आज यह बेचारा हम लोगो के आगे कहाँ जायेगा? इतना कहकर उन निर्दय कुमारों ने कंकरों और पत्थरों से उन्हे तब तक मारा जब तक कि वे घायल होकर पृथ्वी पर नहीं गिर पड़े।

क्रोधाधिक्यात्ततो दध्रे दष्टोष्ठो भृकुटीकुटीम्।
प्रलयाय यदूनां सः प्रायः स्वतपसोऽपि च ।।

तदनन्तर क्रोध की अधिकता से मुनि अपना ओंठ डॅसने लगे तथा यादवों और अपने तप को नष्ट करने के लिए उन्होंने भृकुटी चढ़ा ली।

मदमाते हाथियों के समान अत्यन्त चंचलकुमार द्वारिकापुरी में प्रविष्ट हुए तब उनमें से किसी ने यह दुर्घटना शीघ्र ही कृष्ण के लिए जा सुनायी। बलदेव तथा नारायण ने द्वैपायन से सम्बन्ध रखनेवाली इस घटना को सुनकर समझ लिया कि जिनेन्द्र भगवान ने जो द्वारिका का क्षय बतलाया था, वह आ पहुँचा है – अब शीघ्र ही द्वारिका का क्षय होने वाला है।

संभ्रमेण परिप्राप्तौ परित्यक्तपरिच्छदौ।
मुनिं क्षमयितुं क्रोधाज्ज्वलन्तमिव पावकम्।।59।।

बलदेव एवं नारायण घबड़ाहटवश सब प्रकार का परिकर छोड़ क्रोध से अग्नि के समान जलते हुए, मुनि को शांत करने के लिये, उनसे क्षमा माँगने के लिये उनके पास दौड़ पडे।

दृष्टः संक्लिष्टधीस्ताभ्यां भ्रू भगंविषमाननः।
दुर्निरीक्ष्येक्षणः क्षीणः कण्ठप्राणो विभीषणः।।60।।
कृताज्जलिपुटाभ्यां स प्रणिपत्य महादरात्।
याच्यते याचना बन्ध्यं जानद्भयामपि मोहतः।।61।।

जिनकी बृद्धि अत्यन्त संक्लेशमय थी, भ्रकुटी के भंग से जिनका मुख विषम हो रहा था, जिनके नेत्र दुःख से देखने योग्य थे, जिनके प्राण कण्ठगत थे और जो अत्यन्त भयंकर थे ऐसे द्वैपायन मुनि को बलदेव और श्रीकृष्ण ने देखा। उन्होंने हाथ जोड़कर बड़े आदर से मुनि को प्रणाम किया और "हमारी याचना व्यर्थ होगी" यह जानते हुए भी मोहवश याचना की।

रक्ष्यतां रक्ष्यतां साधों चिरं सुपरिरक्षितः।
क्षमामूलस्तपोभारो धक्ष्यते क्रोधवह्निना।।62।।

उन्होंने कहा कि है साधों! आपने चिरकाल से जिसकी अत्यधिक रक्षा की है तथा क्षमा ही जिसकी जड़ है ऐसा यह तप का भार क्रोधरूपी अग्नि से जल रहा है सो इसकी रक्षा की जाये, रक्षा की जाये।

मोक्षसाधनमप्येष तपो दूषयति क्षणात्।
चतुर्वर्गरिपुः क्रोधः क्रोधः स्वपरनाशकः।।63।।

यह क्रोध मोक्ष के साधनभूत तप को क्षणभर में दूषित कर देता है, यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों वर्गो का शत्रु है तथा निज और पर को नष्ट करने वाला है।

क्षम्यतां क्षम्यतां मूढैः प्रमादबहुलैः कृतम्।
दुर्विचेष्टितमस्मभ्यं प्रसादः क्रियतां यते।।64।।

हे मुनिराज! प्रमाद से भरे हुए मुर्ख कुमारों ने जो दुष्ट चेष्टा की है उसे क्षमा किजिये, क्षमा किजिये, हमलोगों के लिये प्रसन्न होइये।"

इत्यादि प्रिय वचन बोलने वाले बलदेव और कृष्ण ने द्वैपायन से बहुत प्रार्थना की पर वे अपने निश्चय से पीछे नहीं हटे। उनकी बुद्धि अत्यन्त पापपूर्ण हो गयी और वे प्राणियों सहित द्वारिकापुरी के जलाने का निश्चिय कर चुके थे। उन्होंने बलदेव और कृष्ण के लिए दो अंगुलिया दिखायीं तथा इशारे से स्पष्ट सूचित किया कि तुमदोनों का ही छुटकारा हो सकता है अन्य का नहीं। जब बलदेव और कृष्ण को यह विदित हो गया कि इनका क्रोध पीछे हटने वाला नहीं है तब द्वारिका का क्षय जान बहुत दुखी हुए और किंकर्त्तव्यविमूढ हो नगरी की ओर लौट आये। उस समय शम्बकुमार आदि अनेक चरमशरीरी यादव नगरी से निकलकर दीक्षित हो गये तथा पर्वत की गुफा आदि में विराजमान हो गये।

मृत्वाक्रोधाग्निनिर्दग्धतपः सारधनश्च सः।
ब्रभूवाग्निकुमाराख्यों मिथ्यादृग्भवनामरः।।

क्रोधरूपी अग्नि के द्वारा जिनका तपरूपी श्रेष्ठ धन भस्म हो चुका था ऐसे द्वैपायन मुनि मरकर अग्निकुमार नामक मिथ्यादृष्टि भवनवासी देव हुए।

अन्तर्मुहुर्तकालेन पर्याप्तः प्रतिबुद्धवान्।
विभगंने विकारं स्वं कृतं यदुकुमारकैः।।66।।

वहां अन्तर्मुहुर्त्त में ही पर्याप्तक उन्होंने यादव कुमारों के द्वारा किये गये हुए अपने अपकार को विभंगावधिज्ञान के द्वारा जान लिया।

रौद्रध्यानं स दध्यौ मे तपस्थस्य निरागसः।
हिंसकानां पुरीं सर्वां दहामि सह जन्तुभिः।।67।।
इति ध्यात्वा स दुर्वारों यावदायाति दारूणः।
द्वारावत्यां महोत्पातास्तावज्जाताः क्षयावहाः।।68।।

उन्होंने इस रौद्रध्यान का चिन्तवन किया कि देखों मैं निरपराधी तप में लीन था फिर भी इन लोगों ने मेरी हिंसा की अतः मैं इन हिंसकों की समस्त नगरी को सब जीवों के साथ अभी हाल भस्म करता हूँ।" इस प्रकार ध्यान कर क्रूर परिणामों के धारक वह दुर्वार देव ज्योंही आता है त्योंही द्वारिका में क्षय को उत्पन्न करने वाले बड़े–बड़े उत्पात होने लगे।

बभूवुः प्रत्यगारं च रोमहर्षविकारिणः।
प्रजानां निशि सुप्तानां स्वप्नाश्च भयशंसिनः।।68।।

घर–घर में जब प्रजा के लोग रात्रि के समय निश्चिन्तता से सो रहे थे तब उन्हे रोमांच खड़े कर देने वाले भय सूचक स्वप्न आने लगे।

प्राप्य पापमतिश्चासौ पुरीमारभ्य बाह्यतः।
कोपी दग्धुं समारेभे तिर्यग्मानुषपूरिताम।।

अन्त में उस पापबुद्धि क्रोधी देव ने जाकर बाहर से लेकर तिर्यंच और मनुष्यों से भरी हुई नगरी को जलाना शुरू कर दिया।

धूमज्वालाकुलान् वृद्धस्त्रीबालपशुपक्षिणः।
नश्यतोऽग्नौ क्षिपत्येष कारूण्यं पापिनः कुतः।।

वह धूम और अग्नि की ज्वालाओं से आकुल हो नष्ट होते हुए वृद्ध, स्त्री, बालक पशु तथा पक्षियों को पकड़–पकड़ कर अग्नि में फेकने लगा सो ठीक ही है क्योंकि पापी मनुष्यों को दया कहाँ होती है।

उस समय अग्नि में जलते हुए समस्त प्राणियों की चिल्लाहट के जो शब्द हुए थे वैसे शब्द इस पृथ्वी पर कभी नहीं हुए थे। दिव्य अग्नि के द्वारा जब नगरी जल रही थी जब जान पड़ता था कि देव लोग कहीं चले गये थे सो ठीक ही है क्योंकि भवितव्यता दुर्निवार है। अन्यथा इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने जिस नगरी की रचना की थी तथा कुबेर ही जिसकी रक्षा करता था वह नगरी अग्नि के द्वारा कैसे जल जाती ? हे बलदेव और कृष्ण! हम लोग चिरकाल से अग्नि के भय से पीड़ित हो रहे है, हमारी रक्षा करो। इस प्रकार, स्त्री, बालक और वृद्धजनों के घबराहट से भरे शब्द सर्वत्र व्याप्त हो रहे थे। घबड़ाये हुए बलदेव और श्रीकृष्ण कोट फोड़कर समुद्र के प्रवाहो से अग्नि को बुझाने लगे। बलशाली बलदेव ने अपने हल से समुद्र का जल खींचा परन्तु वह जल तेलरूप में परिणित हो गया और उससे अग्नि अत्यधिक प्रज्जवलित हो उठी। जब बलदेव और कृष्ण को इस बात का निश्चय हो गया कि अग्नि असाध्य है– बुझायी नहीं जा सकती तब उन्होंने दोनों माताओं को, पिता को तथा अन्य बहुत से लागों को रथपर बैठाकर तथा रथ में हाथी और घोड़े जोड़कर रथ को पृथ्वी पर चलाया परन्तु रथ के पहिये जिस प्रकार कीचड़ में फँस जाते है उस प्रकार पृथ्वी में फस गये सो ठीक है क्योंकि विपत्ति के समय कहाँ हाथी और कहा घोडे काम आते है ? हाथी और घोडे को बेकार देखकर जब दोनों भाई स्वयं ही भुजाओं से रथ खींचकर चलने लगे तब उस पापी देव ने वज्रमय कील से कीलकर रथ को रोक दिया। जब तक बलदेव पैर के आधात् से कील को उखाडते है तब तक उस क्रोधी दैत्य ने नगर का द्वार बन्द कर दिया। जब दोनों भाईयों ने पैर के आधात से द्वार का कपाट को शीघ्र ही गिरा दिया तब तक शत्रु ने कहा कि तुम दोनों के सिवाय किसी अन्य का निकलना नहीं हो सकता।

तदनन्तर अब हम लोगों का विनाश निश्चित है यह जानकर दोनों माताओं और पिता ने दुखी होकर कहा कि पुत्रों! तुम जाओ। कदाचित् तुम दोनों के जीवित रहते वंश घात को प्राप्त नहीं होगा। इस प्रकार गुरूजनों के वचन मस्तक

पर धारण कर दोनों भाई अत्यन्त दुखी हुए तथा दुख से पीड़ित होकर दीन माता–पिता को शांतकर और उनके चरणों में गिर कर उनके वचनों को मानते हुए नगर से बाहर निकल आये।

ज्वालाओं के समूह से जिसके महल जल रहे थे ऐसी नगरी से निकलकर दोनों भाई पहले तो गतिहीन हो गये– इस बात का निश्चय नहीं कर सके कि कहाँ जाया जाये ? वे बहुत देर तक एक दूसरे के कण्ठ से लगकर रोते रहे। तदनन्तर दक्षिण दिशा की ओर चले। इधर वासुदेव आदि यादव तथा उनकी स्त्रियाँ अनेक लोग सन्यास कर स्वर्ग में उत्पन्न हुए। बलदेव के पुत्रों आदि को जो कुछ चरमशरीरी थे उन्होंने वहीं संयम धारण कर लिया और उन्हें जृम्भकदेव जिनेन्द्र भगवान् के पास ले गये।

यदूनां यादवीनां च धर्म्यध्यानवशात्मनाम्।
सम्यग्दर्शनशुद्धानां प्रयोपगमनाञ्चिताम्।।93।।
बहूनां दह्यमानानामपि देहविनाशनः।
जातो हुताशनो रौद्रौ न तु ध्यानविनाशनः।।94।।

जिनकी आत्मा धर्मध्यान के वशीभूत थी–जो सम्यक्दर्शन से शुद्ध थे तथा जिन्होंने प्रायोपगमन नामक सन्यास धारण कर रखा था ऐसे बहुत से यादव और उनकी स्त्रियाँ यद्यपि अग्नि में जल रही थीं तथापि भयंकर अग्नि केवल उनके शरीर को नष्ट करनेवाली हुई, ध्यान को नष्ट करनेवाली नही।

आर्तध्यानकरः प्रायो मिथ्यादृष्टिसु जायते।
उपसर्गश्रुतर्भेदो न सददृष्टेस्तु जातुचित्।।95।।

मनुष्य, तिर्यंच, देव और जड़ के भेद से चार प्रकार का उपसर्ग प्रायः मिथ्यादृष्टि जीवों को ही आर्त्तध्यान का करने वाला होता है, सम्यक्दृष्टि जीव को कभी नहीं।

आगाढे वाप्त्यनागाढे मरणे समुपस्थिते।
न मुह्यन्ति जना जानु जिनशासनभाविताः।।96।।

जो मनुष्य जिनशासन की भावना से युक्त है वे सम्भावित और असम्भावित किसी प्रकार का मरण उपस्थित होने पर कभी मोह की प्राप्त नहीं होते।

मिथ्यादृष्टेः सतो जन्तोर्मरणं शोचनाय हि।
न तु दर्शनशुद्धस्य समाधिमरणं शुचे।।97।।

मिथ्यादृष्टि जीव का मरण शोक के लिए होता है, परन्तु सम्यक्दष्टि जीव का समाधिमरण शोक के लिए नहीं होता।

मुतिर्जातस्य नियता संसृतो नियतेर्वशात्।
सा समाधियुजो भूयादुपसर्गेऽपि देहिनः।।98।।

संसार का नियम ही ऐसा है कि जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है। अतः सदा यह भावना रखनी चाहिये कि उपसर्ग आने पर भी समाधिपूर्वक ही मरण हो।

धन्याशिखिशिखाजालकवलीकृतविग्रहाः।
अपि साधु समाधाना ये त्यजन्ति कलेवरम्।।99।।

वे मनुष्य धन्य है जो अग्नि की शिखाओं के समूह में ग्रस्त शरीर होने पर भी उत्तम समाधि से शरीर को छोडते है।

तपो वा मरणं वापि शस्तं स्वपरसौख्यकृत्।
न च द्वैपायनस्येव स्वपरादुखकारणम्।।100।।

जो तप और मरण निज़ तथा पर को सुख करनेवाला है वहीं उत्तम है – प्रशंसनीय है, जो तप द्वैपायन के समान निज और पर को दुःख का कारण है वह उत्तम नही है।

परस्यापकृतिं कुर्वन् कुर्यादेकत्र जन्मनि।
पापी परवधं स्वस्य जंतुर्जन्मनि जन्मनि।।101।।

दूसरे का अपकार करनेवाला पापी मनुष्य, दूसरे का वध तो एक जन्म मे कर पाता है पर उसके फलस्वरूप अपना वध जन्म जन्म में करता है।

कषायवशगः प्राणी हन्ता स्वस्य भवे–भवे।
संसारवर्धनोंऽन्येषां भवेद्वा वधको न वा।।102।।

यह प्राणी दूसरो का वध कर सके अथवा न कर सके परन्तु कषाय के वशीभुत हो अपना वध तो भव–भव में करता है, तथा अपने संसार को बढ़ाता है।

परं हन्मीति संध्यातं लोहपिण्डमूपाददत।
दहत्यात्मानमेवादौ कषाय वशगस्तथा।।103।।

जिस प्रकार तपाये हुए लोहे के पिण्ड को उठाने वाला मनुष्य पहले अपने आपको जलाता है पश्चात् दूसरे को जला सके अथवा नहीं। उसी प्रकार कषाय के वशीभूत हुआ प्राणी "दूसरे का घात करू" इस विचार के उत्पन्न होते ही पहले अपने आप का धात करता है पश्चात् दूसरे का धात कर सके या नहीं कर सके।

संसारान्तकरं पुंसामेकेषां परमं तपः।
द्वैपायनस्य तज्जातं दीर्घसंसारकारणम्।।104।।

किन्ही मनुष्यों के लिये यह परम तप संसार का अन्त करने वाला है पर द्वैपायन मुनि के लिए दीर्घ संसार का कारण हुआ।

जन्तोंः को वापराधोऽत्र स्वकर्मवशवर्तिनः।
यत्नवानपि यज्जन्तुमोह्यर्ते माहेवैरिणा।।105।।

अथवा इस संसार में अपने कर्म के अनुसार प्रवृति करनेवाले प्राणी का क्या अपराध है? क्योंकि यत्न करनेवाला प्राणी भी मोहरूपी वैरी के द्वारा मोह को प्राप्त हो जाता है।

अपाक्रियेतापि परः कथंचिदतितिक्षुणा।
उपक्रियते यद्यात्मा तथेह परलोकयोः।।106।।

असहनशील पुरूष दूसरे का अपकार किसी तरह कर भी सकता है परन्तु उसे अपने आपका तो इस लोक और परलोक मे ही उपकार करना चाहिये।

परदुःखविधानेन यत्स्वदुःखपरम्परा।
अवश्यम्भाविनी तस्मात्तितिक्षैवातिभाव्यताम्।।107।।

क्योकि दूसरो को दुःख पहुँचाने से अपने आपको भी दुःख की परम्परा प्राप्त होती है, इसलिये क्षमा अवश्यम्भावी हैः अवश्य ही धारण करने योग्य है ऐसा निश्चय करना चाहिये।

क्रोधान्धेन विधेर्वशेन नगरी द्वैपायनेनाखिला–
बालस्त्रीपशुवृद्धलोककलिता द्वाराकुला द्वारिका।
मासैः षड्भिरशेषिता विलसिता संत्यज्य जैनं वचो–
धिक् क्रोधं स्वपरापकारकरणं संसार संवर्धनम्।

गौतमस्वामी कहते है कि देखो, विधि के वशीभूत हुए क्रोध से अंधे द्वैपायन ने जिनेन्द्र भगवान के वचन छोड़कर बालक, स्त्री, पशु व वृद्धजनों से व्याप्त एवं अनेक द्वारो से युक्त शौभायमान द्वारिकानगरी को छहमास में भस्म कर नष्ट कर दिया सो निज और पर के अपकार का कारण तथा संसार को बढानेवाले इस क्रोध को धिक्कार है। (हरिवंश पुराण)

क्रोध का दुष्परिणाम

मणिवत् देश के भीतर मणित नगर में मणिमाली नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम गुणमाला और पुत्र का नाम मणिशेखर था। किसी समय रानी गुणमाला राजा के बालों को संभाल रही थी। तब उसे उनमें श्वेत बाल दिख पड़ा। उसे देखकर उसने राजा से कहा कि यम का दूत आ गया है। वह कहाँ है ? ऐसा राजा के पूछने पर उसने उसे दिखला दिया। इससे राजा को विरक्ति हुई। तब उसने मणिशेखर को राज्य देकर बहुत से राजाओं से साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। एक समय वह समस्त आगम का ज्ञाता होकर उज्जयनि के श्मशान में मृतक शैय्या (शवासन) से स्थित था इतने में वहाँ कोई सिद्ध पुरुष बेताल विद्या को सिद्ध करने के लिए मनुष्य की खोपड़ी में दूध और चावलों को लेकर आया। उसे मनुष्य के मस्तकरुपी चूल्हे पर खीर पकानी थी। उसने दो चारों के मस्तकों के साथ मुनि के मस्तक को मिलाकर और उसे चूल्हा बनाकर उसके ऊपर उसे पकाना प्रारम्भ कर दिया। इस अवस्था में शिराओं (नसों) के

सिकुड़ने से मुनि का हाथ मस्तक पर आ पड़ा। इससे वह खोपड़ी नीचे गिर गई और दूध फैल जाने से आग बुझ गई। तब वह सिद्ध भाग गया। प्रातः काल में सूर्य का उदय होने पर किसी मुनि निवेदक ने इस उपसर्ग का समाचार जिनदत्त सेठ से कहा, सेठ ने उन्हें लाकर अपने घर रखा और औषधि के लिये वैद्य से पूछा, वैद्य ने उत्तर दिया कि सोमशर्मा भट्ट के घर में लक्षमूल तेल है। इससे जला हुआ मनुष्य निरोग हो जाता है। तत्पश्चात् जिनदत्त सेठ ने सोमशर्मा के घर जाकर उसकी पत्नी तुकारी से तेल की याचना की। वह बोली की, ऊपर के खण्ड में उस तेल के घड़े स्थित हैं, उनमें से एक घड़ा ले लो। सेठ उसे लेकर सेवक के हाथ में दे रहा था कि वह नीचे गिरकर फूट गया। तब उसने कहा कि दूसरा ले लो। परन्तु इस प्रकार वह दूसरा और तीसरा घड़ा भी नष्ट हो गया। तब सेठ को भय उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वह बोली कि डरो मत जब तक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता तब तक उसे ग्रहण करो। तब जिनदत्त ने एक घड़े को भेजकर उससे पूछा कि हे माता! घड़ों के फूट जाने पर तुमने क्रोध क्यों नहीं किया। उसने उत्तर दिया कि हे सेठ! मैं क्रोध का फल भोग चूकी हूँ। यह इस प्रकार से –

आनन्दपुर में शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्री का नाम कमलश्री था। उनके आठ पुत्र और भट्टा नाम की एक पुत्री मैं थी। जब कोई मुझे "तू" कहता तब बड़ा अनिष्ट (अनर्थ) होता। इसलिये तब पिता ने नगर में ये घोषणा करा दी कि भट्टा को कोई तूं न कहे। इससे मेरा नाम "तूंकारी" प्रसिद्ध हो गया। क्रोधी स्वभाव होने से मेरे साथ कोई भी विवाह करने के लिये उद्यत नहीं होता था। इस सोमशर्मा ब्राह्मण ने 'मैं इसे 'तूं' कह करके न बुलाऊंगा ऐसी व्यवस्था करके मेरे साथ विवाह कर लिया और फिर मुझे यहाँ ले आया। पूर्व निश्चय के अनुसार मेरे साथ कभी तूं का व्यवहार नहीं करता था। एक दिन वह नाटक देखने के लिये गया, और बहुत रात बीत जाने पर घर वापिस आया। उसने आकर कहा कि हे प्रिये ! द्वार खोलो, परन्तु क्रोधाग्नि के वश होकर मैंने द्वार नहीं खोला। इस प्रकार से जब बहुत समय बीत गया तब उसने मुझे तूँ कहकर बुलाया। बस फिर क्या था, मैं क्रोधित होकर नगर से बाहर निकल गई। तब चोरों ने मेरे आभरणादि छीनकर मुझे एक भील के स्वामी को दे दिया वह मेरे सतीत्व को नष्ट करन के लिये उद्यत हो गया, तब उसे वन देवता ने निवारित किया। उसने भी मुझे एक व्यापारी को दे दिया। वह भी मेरे सतीत्व को भ्रष्ट करना चाहता था, परन्तु कर नही सका। तब उसने मुझे कृमिराग कम्बल द्वीप में ले जाकर किसी पारस को बेच दिया। वह प्रत्येक पखवाड़े में मेरी धमनियों को खींचकर वस्त्र रंगने के लिये रुधिर निकालता और लक्षमूल तेल को लगाकर शरीर की पीड़ा को नष्ट किया करता था। इस प्रकार दुखों को सहन करती हुई मैं वहाँ रह रही थी। कुछ समय पश्चात् मैंने जैन मुनि के समीप में क्रोध के त्याग का नियम ले लिया। यही कारण है जो अब मैं क्रोध नहीं करती हूँ।

क्रोधी तो घाते स्वहित जन

चम्पापुरी में एक देवदत्ता नाम की वेश्या थी। उसने एक तोता पाला था। रविवार के दिन वेश्या कटोरी में मद्य रख कर चली गई। इतने में किसी दूसरी स्त्री ने आकर उसमें विष मिला दिया। तोता ने सोचा कि जब देवदत्ता आकर उसे पीवेंगी तो वह मर जावेगी इसी भय से तोते ने उस मद्य को बिखेर दिया। इस से क्रोधित होकर वेश्या ने उसे मार डाला।

क्रोध का परिणाम स्वजन मरण

कौशाम्बीपुरी में एक सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था। उस के कपिला नाम की स्त्री थी जो पुत्र रहित थी। किसी दिन ब्राह्मण को वन में एक नेवले का बच्चा दिखा उसने उस को लाकर कपिला को दे दिया। उसने उसको शिक्षित किया । वह उसके संकेत के अनुसार कार्य किया करता था। कुछ दिनों के बाद कपिला को पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन कपिला ने पुत्र को पालने में सुलाकर नेवले के संरक्षण में किया और वह स्वयं बाहर जाकर चावलों को कूटने लगी। उस समय एक सर्प बालक की ओर आ रहा था। नेवले ने सर्प को बालक की ओर आता हुआ देखकर उसके टुकड़े–टुकड़े कर दिऐ। ज्योंहि कपिला ने नेवले के मुख को सर्प के रक्त से सना हुआ देखा त्योंहि उसने यह सोचकर कि इसने बालक को खा लिया है मूसल के आघात से उसे मार डाला।

क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां,
देहिस्थितो देहविनाश हेतुः ।
अग्नि यंथा काष्ठगतोऽपि गूढः,
स एव काष्ठं दहतीत नित्यम् ।136।

क्रोध ही मनुष्यों का सबसे पहला शत्रु है, क्योंकि वह शरीर में स्थित होता हुआ ही शरीर के नाश का कारण है। जैसे जो अग्नि काष्ठ में स्थित होकर छिपी रहती है, वही इस संसार में निरन्तर काष्ठ को जलाती है ।

क्रोधो मूलमनर्थानां, क्रोधः संसारवर्धनः
धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं विवर्जयेत् ।137।

क्रोध अनर्थो का मूल है, क्रोध संसार को बढ़ाने वाला है और क्रोध धर्म का क्षय करने वाला है । इसलिए क्रोध को छोड़ देना चाहिये ।

क्रोधस्य कालकूटस्य, विद्यते महदन्तरम् ।
स्वाश्रयं दहति क्रोधः कालकूटो न चाश्रयम् ।138।

क्रोध और कालकूट विष में बड़ा अन्तर है क्योंकि क्रोध तो अपने आश्रयी को जलाता है परन्तु कालकूट अपने आश्रयी को नहीं जलाता है ।

क्रोधानलसमुत्पन्नो महादाहः शरीरिणाम् ।
निर्दहति तपो वृत्तं धर्मं द्वैपायनादिवत् ।139।

क्रोधरुपी अग्नि से उत्पन्न हुई बड़ी भारी दाह, द्वैपायन आदि के समान

मनुष्यों के तप, चरित्र तथा धर्म को बिल्कुल जला देती है।

पूर्वं शोषयते ग्राह्यं, क्रोधाग्निः प्रकटीस्थितः ।
पश्चादन्या अपि दधाद् दुःखशोकादिदुर्गतीः ।140।

क्रोध प्रकट होकर सबसे पहले शरीर को सुखाता है । पीछे दुःख, शोक आदि अन्य दुर्गतियों को भी देता है ।

तावतपो व्रतं ध्यानं स्वस्थचित्तं दयादिकम् ।
यावत्क्रोधो न जायेत तस्मात्क्रोधं त्यजेन्मुनिः ।141।

व्रत, ध्यान, स्वस्थ चित् तथा दया आदिक तभी तक रहते हैं जब तक क्रोध उत्पन्न नहीं होता, इसलिए मुनि को क्रोध छोड़ देना चाहिए ।

उत्तमस्य क्षणं कोपो, मध्यमस्य प्रहरद्वयम् ।
अधमस्य त्वहोरात्रं पापिष्ठस्य सदा भवेत् ।142।

उत्तम मनुष्य का क्रोध क्षणभर ठहरता है। मध्यम पुरुष का दो प्रहर ठहरता है, नीच का दिन ठहरता है और अत्यन्त पापी मनुष्य का क्रोध सदा ठहरता है।

अपकुर्वति कोपश्चेत् किं कोपाय न कोपाय न कुप्यति ।
त्रिवर्गस्यापवर्गस्य जीवितस्य च नाशिने ।144।

यदि अपकार करने वाले पर क्रोध किया जाता है, तो त्रिवर्ग को, मोक्ष को और जीवन को नष्ट करने वाले क्रोध पर क्यों नहीं क्रोध करते हो।

वैरं विवर्धयति सख्यमपाकरोति,
रूपं विरूपयति निन्द्यमतिं तेनाति ।
दौर्भाग्यमानयति नाशयते च कीर्तिं ।
लोकेऽत्र रोषसृदशो न हि शत्रुरस्ति ।145।

वैर को बढ़ाता है, मित्रता को दूर करता है, रुप को विरुप करता है, निन्दित बुद्धि–दुर्बुद्धि को विस्तत करता है, दौर्भाग्य को लाता है और कीर्ति को नष्ट करता है। समचुम ही इस संसार में क्रोध के समान कोई दूसरा शत्रु नहीं है।

यस्य रुण्ठे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहानुग्रहो न स्तः सरुष्टः किं करिष्यति ।146।

जिनके क्रुद्ध होने पर भय नहीं होता और संतुष्ट होने पर धन की प्राप्ति नहीं होती, इस तरह जिसमें निग्रह और अनुग्रह करने की क्षमता नहीं है, वह क्रुद्ध होकर क्या करेगा ?

सूपकारं कविं वैद्यं वन्दिनं शास्त्रपाणिकम् ।
स्वामिनं धनिनं मूर्खं मर्मज्ञं न च कोपयेत् ।147।

रसोइया, कवि, वैद्य, वन्दी हथियार हाथ में लिए हुए स्वामी, धनी, मूर्ख और मर्मज्ञ को जानने वाला इतने मनुष्यों को कुपित नहीं करना चाहिए ।

अध्याय 2

क्षमाभाव : मोक्षभाव

तस्मात्प्रशममालम्ब्य क्रोधवैरी निवार्यताम् ।
शमामृतमहाम्भोधेखगाहश्च सेव्यताम् ।48।

इस कारण उत्कृष्ट शान्ति का आश्रय लेकर उस क्रोधरुप शत्रु का निराकरण करते हुए शमभावरुप विशाल अमृत के समुद्र का अवगाहन करना चाहिये।

क्रोधवह्ने क्षमैकेयं प्रशान्तौ जलवाहिनी ।
उद्यामसंयमारामप्ततिर्वात्यन्तनिर्भरा ।49।

क्रोधरुप अग्नि को शान्त करने के लिए यह क्षमा अनुपम नदी के समान है तथा वह उत्कृष्ट संयमरुप उद्यान की अतिशय दृढ़ वृति (कांटो आदि से निमित्त खेत की बाड़) है।

जयन्ति यमिनः क्रोधं लोकद्वयविराधकम् ।
तन्निमित्तेऽति संप्राप्ते भावयन् भावनामिमाम् ।50।

मुनि क्रोध के निमित्त के उपस्थित होने पर भी इसे आगे कही जाने वाली भावना का चिन्तन करते हुए दोनों लोकों के विधायक इस क्रोध पर विजय प्राप्त किया करते हैं।

यद्यद्य कुरुते कोऽपि मां स्वस्थं कर्मपीडितम् ।
चिकित्सा स्फुटं दोषं स एवाकृत्रिम सुहृत् ।51।

वह भावना इस प्रकार है – यदि आज कोई कर्म से पीड़ित मेरे दोष की चिकित्सा करके मुझे स्वस्थ–निरोग (आत्मस्थ) करता है तो उसे स्पष्टतया अकृत्रिम (स्वयंप्राप्त) मित्र ही समझना चाहिये ।

लोकद्वयविनाशाय पापाय नरकाय च ।
स्वपरस्यापकाराय क्रोध शत्रुः शरीरिणाम् ।46।

क्रोध प्राणियों का वास्तविक शत्रु ही है, क्योंकि वह उनके दोनों लोकों के नाश, पाप संचय, नरकप्राप्ति और स्व–पर के अपकार (अहित) का कारण है।

अनादिप्रभवो वैरी कषायविषमग्रहः ।
स एवानन्तदुर्वारदुःखसंपादनक्षमः ।47।

अनादिकाल से उत्पन्न हुआ वह कषायरुप भयानक पिशाच शत्रु के समान अनन्त और दुर्निवार दुःख के उत्पन्न करने में समर्थ है ।

हत्वा स्वपुण्यसंतानं मद्दोषं यो निकृन्तति ।
तस्मै यदिह रुष्यामि मदन्यः क्रोऽधमस्तदा ।52।

जो अपने पुण्य की परम्परा को नष्ट करके मेरे दोष को दूर करता है उसके ऊपर यदि मैं यहाँ क्रोध करुंगा तो मुझसे निकृष्ट दूसरा कौन होगा ? कोई नहीं।

आक्रुष्टोऽहं हतो नैव हतो वा न द्विधाकृतः ।
मारितो न हतो धर्मो मदीयो मदीयोऽनेन बन्धुना ।53।

यदि कोई अपशब्द कहता है – गाली देता है तो मुनि उस समय यह विचार करते हैं कि मेरे लिए इसने अपशब्द ही तो कहे हैं, मुझ कुछ मारा तो नहीं है। यदि वह कदाचित् मारने भी लग जावे तो वे विचार करते हैं कि इसने मुझे मारा ही तो है, मेरे कुछ दो टुकड़े तो नहीं किये – प्राणघात तो नहीं किया। कदाचित् वह प्राणों के घात में ही प्रवृत्त हो जाता है तो वे सोचते हैं कि इसने मेरे शरीर का ही घात किया है, मेरे धर्म का कुछ घात नहीं किया – उसका तो उसने संरक्षण ही किया है, अतएव वह मेरा बन्धु (हितैषी) ही हुआ। फिर भला उसके ऊपर क्रोध क्यों करना चाहिए? अर्थात उसके ऊपर क्रोध करना उचित नहीं है ।

निंदक ही निंदा का भागी

एक ब्राह्मण गौतम बुद्ध से दीक्षा लेकर भिक्षु हो गया। उसका एक सम्बन्धी इससे बड़ा बिगड़ा और आकर तथागत को गालियाँ देने लगा। जब थककर चुप हो गया तो तथागत ने पूछा – "क्यों भाई तुम्हारे घर कभी अतिथि आते हैं ?"

'आते हैं ।'

'तुम उनका सत्कार करते हो ?'

'मान लो तुम्हारी दी हुई चीजें अतिथि स्वीकार न करें तो वे कहाँ जायेगी ?'

'वे जायेंगी कहाँ, अतिथि नहीं लेगा तो मेरे ही पास रहेंगी ।'

'तो भद्र ! तुम्हारी दी हुई गालियाँ मैं स्वीकार नहीं करता ।'

ब्राह्मण का मस्तक लज्जा से झुक गया ।

शत्रु के प्रति क्षमा एवं करुणा

भगवान् महावीर शान्ति साधना के सर्व मंगल शिखर पर पहुँच गये थे। समग्र विश्व के प्रति भले ही वह स्नेही हो अथवा द्वेषी – उनके हृदय में कल्याण की भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी। विरोधी--से–विरोधी भी उनकी अपार क्षमा, अपार शान्ति एवं अपार प्रेम को देखकर सहसा गद्‌गद हो जाता था। एक घटना के द्वारा यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है ।

स्वर्गलोक में एक दिन देव–सभा लगी हुई थी। देवराज इन्द्र रत्नजड़ित सिंहासन पर अपनी पूरी छवि के साथ विराजमान थे। अप्सराएं नाच रही थी, बोधों की मधुर स्वर–लहरें गूँज रही थी, सभा नृत्य और गान में भान भूले हुए थी।

देवराजइन्द्र शरीर से सिंहासन पर थे, परन्तु मन वहाँ न था। वह मर्त्युलोक में प्रभु महावीर के दर्शन कर रहा था। भगवान् शून्य वन में प्रकृति के

भीषण उपद्रवों में भी प्रशान्त महासागर के समान शान्त थे । इन्द्र प्रभु की अद्‌भूत तितिक्षा को देखकर सहसा चकित हो उठे –

"प्रभो! कितना दिव्य धैर्य है। कितना अदम्य साहस है। ये प्रकृति के उपद्रव भला आपको कभी पराजित कर सकते हैं ? शक्तिशाली देव और दैत्य भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। आप तो बज्रप्रकृति के बने हैं। आप यथा नाम तथा गुण हैं। आप वस्तुतः सच्चे अर्थ में महावीर हैं।"

देव सभा में सभी ने तुमुल जयघोष के साथ अनुमोदन किया परन्तु संगमदेव के हृदय में यह बात न बैठ सकी। वह एक वैभवशाली प्रतिष्ठित देव था और उसे अपने दिव्य देवी बल पर घमण्ड भी बहुत अधिक था। वह भगवान् के पास उन्हें पथभ्रष्ट करने पहुँचा।

संगम ने उपसर्गो का तूफान खड़ा कर दिया। जितना भी वह कष्ट दे सकता था दिया। शरीर का रोम–रोम पीड़ा से बींध डाला, फिर भी पीड़ा से विचलित न हुए, तो प्रलोभनों का जाल बिछाया गया। आकाश लोक से एक से एक सुन्दर अप्सराएं उतरी। नृत्य हुआ, गान हुआ, हावभाव प्रदर्शित हुए, सब कुछ हुआ परन्तु भगवान् का हृदयमेरु स्वभाव तनिक भी प्रकम्पित नहीं हुआ।

इने–गिने दिन नहीं, पूरे छह महीने तक सुख–दुःख का तांता बंधा ही रहा। अन्त में संगम का धैर्य ध्वस्त हो गया। वह हार गया। परन्तु हारा हुआ भी अपनी बात जरा ऊपर रखने को बोला –

"भगवान! आप जानते हैं, मैं संगमदेव हूँ। यह जो कुछ भी हो रहा था, आपकी परीक्षा के लिये हो रहा था और कोई हेतु नहीं था। पर अब विचार करता हूँ कि क्यों किसी साधक को सताया जाए ? मैं देख रहा हूँ कि इन छह महीनों में आपको बहुत कष्ट रहा है। आप अच्छी तरह संयम की आराधना नहीं कर सके हैं। अतः प्रभो, अब आप आराम के साथ साधना कीजिए, मैं जा रहा हूँ। दूसरे देवों को भी रोक दूंगा, आपको अब कोई कष्ट नहीं दे पायेगा।"

भगवान की आँखे करुणा से छलछला आई।

"भगवान् यह क्या! कोई कष्ट है ?"

"हाँ संगम, कष्ट है। बहुत कड़ा कष्ट है ।"

"भगवान् क्या कष्ट हैं ? जरा बताइए तो सही, मैं उसे दूर करुंगा।"

"संगम क्या दूर करोगे ? वह तुम्हारे वश की बात नहीं।"

"फिर भी ।"

'संगम, तुम समझते होंगे कि मैं अपने कष्ट की बात कह रहा हूँ। वत्स, यह बात नहीं है। मैं अपने कष्टों की कभी चिन्ता नहीं करता। छह महीने तो क्या, छह वर्ष भी कष्ट देते रहो, तब भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। तुम्हारे दिये ये सब कष्ट तन तक ही रहे हैं, अन्दर में मन तक तो इसका एक अणुमात्र भी अंश नहीं

पहुँचा है। अपितु मैं तो इन कष्टों से अधिकाधिक संहारता हूँ, बिगाड़ता नहीं। हाँ, तो वह कष्ट और ही है।"

"वह कौन सा है ?"

"वह यह कि तुमने अज्ञानता के कारण मुझे जो कष्ट पहुँचाये हैं, इसका भविष्य में क्या फल मिलेगा ? इसका तुझे कुछ पता नहीं, किन्तु मुझे पता है। जब मैं तेरे उस अन्धकारपूर्ण भविष्य पर नजर डालता हूँ, तो काँप उठता हूँ। एक असीम जीव मेरे निमित्त से बाँधे गये दुष्कर्मों के फलस्वरुप कितनी भीषण यातना भोगेगा, कितना कष्ट पाएगा ? आह, कितना दारुण दुःख है। भद्र जैसे भी हो सके, शान्ति लाभ कर।

भगवान् के हृदय में करुणा का समुद्र हिलोरे लेने लगता है । आँखों से सद्भावना की करुणाश्रु फिर बहने लगते हैं ।

संगम करुणामूर्ति के इस अभिनव करुणाप्लावित हृदय को देखकर पानी–पानी हो जाता है ।

कितना दिव्य और लोकोत्तर जीवन, कितना आदर्श विश्व–प्रेम। भगवान् की अमृत–रस भरी दृष्टि में शत्रु और मित्र का द्वैत कभी रहा ही नही। वहाँ मित्र भी मित्र था और शत्रु भी मित्र !

आश्रयं धरणी दत्ते खनितारमपि ध्रुवम् ।
तथा त्वं बाधकान्नित्यं क्षमस्वास्मिन् सुगौरवम् ।1।

धरती उन लोगों को भी आश्रय देती है कि जो उसे खोदते हैं । इसी तरह तुम भी उन लोगों की बाते सहन करो, जो तुम्हें सताते हैं, क्योंकि बडप्पन इसी में है।

तस्मै देहि क्षमादानं यस्ते कार्यविघातकः ।
विस्मृतिः कार्यहानीनां यद्यहो स्यात् तदुत्तमा ।2।

दूसरे लोग तुम्हें हानि पहुँचाएं उसके लिए उन्हें क्षमा कर दो, और यदि तुम उसे भुला सके तो और भी अच्छा है ।

स एव निर्धनो नूनामातिथ्याद् यः पराङ्.मुखः ।
एवं स एव धीरेन्दुमौर्ख्यं येन विसह्यते ।3।

अतिथि–सत्कार से विमुख होना ही सबसे बड़ी दरिद्रता है और मूर्खो की असभ्यता को सह लेना ही सबसे बड़ी वीरता है ।

यदि कामयसे सत्यं हृदयेन सुगौरवम् ।
कार्यस्तर्हि समं सर्वैर्व्यवहारः क्षमामयः ।4।

यदि तुम सदा ही गौरममय बनना चाहते हो तो सबके प्रति क्षमामय व्यवहार करो।

प्रतिवैरं विधत्ते यो न स्तुत्यः स विदाम्वरैः ।
अरावपि क्षमाशीलो बहुमूल्यः स हेमवत् ।5।

जो पीड़ा देने वालों को बदले में पीड़ा देते हैं बुद्धिमान लोग उसको मान नहीं देते, किन्तु जो अपने शत्रुओं को क्षमा कर देते हैं वे स्वर्ण के समान बहुमूल्य समझे जाते हैं।

यावदेकदिनं हर्षो जायते वैरसाधनात् ।
क्षमादानवतः किन्तु प्रत्यंह गौरवं महत् ।6।

बदला लेने का आनन्द तो एक ही दिन होता है, किन्तु क्षमा करने वाले का गौरव सदा स्थिर रहता है ।

प्राप्यापि महत्तीं हानिं स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ।
न लक्ष्यते परं चित्रं नैषेहा वैरशोधने ।7।

क्षति चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न उठानी पड़ी हो परन्तु बड़प्पन इसी में है कि मनुष्य उसे मन में न लायें और बदला लेने के विचार से दूर रहें ।

विधत्ते तव कार्याणां हानिं यो गर्विताशयः ।
सद्वर्तनस्य शस्त्रेण तस्यापि विजयी भव ।8।

घमण्ड में चूर होकर जिन्होंने तुम्हें हानि पहुँचाई है उन्हें अपने उच्च बर्ताव से जीत लो।

गृहं विमुच्य ये जाता ऋषयो लोकपूजिताः ।
तेभ्योऽपि प्रवरा नूनं यैः खलोक्तिर्विसह्यते ।9।

संसार त्यागी पुरुषों से भी बढ़कर सन्त वह है जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु वाणी को सहन कर लेता है।

महान्तः सन्ति सर्वेऽपि क्षीणकायास्तपस्विनः ।
क्षमावन्तमनुख्याताः किन्तु विश्वे हि तापसाः ।10।

उपवास करके तपश्चर्या करने वाले निस्सन्देह महान् है ; पर उनका स्थान उन लोगों के पश्चात् ही हैं जो अपनी निन्दा करने वालों को क्षमा कर देते हैं।

(कुरल काव्य) परिच्छेद 16

'क्रोध मत कर'

(केवल वचन में नहीं कृति में भी)

युधिष्ठर और उनके भाई गुरु जी के पास गये तो गुरु महाराज ने पहले दिन पाठ दिया। 'क्रोध मत कर।' गुरुजी ने लिखाया – क्रोध मत कर। सब ने पढ़ा – क्रोध मत कर। और इसके बाद कहा – अब जाओं इसे याद करों । कल मैं सुनूंगा।

दूसरे दिन सब बच्चे गुरु जी के पास पहुँचे तो उन्होंने कहा – सुनाओं कल का पाठ ।

अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव सबने कल का पाठ सुना दिया क्रोध मत कर। परन्तु युधिष्ठर ने नहीं सुनाया ।

गुरु जी ने पूछा – युधिष्ठर तुझे पाठ याद नहीं हुआ ? बालक युधिष्ठर ने कहा – नहीं गुरुदेव अभी तो नहीं हुआ ।

गुरु जी ने पूछा – कैसा मूर्ख है तू। सबसे बड़ा है। सबसे अयोग्य। जा कल अवश्य याद करके आना। युधिष्ठर बोले प्रयत्न करुंगा गुरुदेव।

दूसरे दिन आया तो युधिष्ठर ने फिर कहा मुझे यह पाठ याद नहीं हुआ।

गुरु जी ने कड़ककर कर कहा – तू मनुष्य है या पशु ? तीन शब्दों का पाठ तुझे याद नहीं हुआ और एक चपत मार दी उसके मूँह पर।

युधिष्ठर ने अपने गाल को सहलाते हुए कहा – मैं प्रयत्न करुंगा गुरु जी।

तीसरे दिन युधिष्ठर के आते ही गुरु जी ने पूछा – क्यों हो गया याद ?

युधिष्ठर ने सिर झुकाकर कहा – नहीं गुरु जी। अब भी याद नहीं हुआ।

गुरु जी ने तीन–चार चपत उसके मुँह पर लगा दिये। गरजकर बोले – तू प्रयत्न नहीं करता। कल यदि पाठ याद नहीं हुआ तो चमड़ी उधेड़ लूँगा। युधिष्ठर ने पहले की भाँति सिर झुकाकर कहा – मैं प्रयत्न करुंगा और उस दिन वह दुर्योधन आदि के पास गया । देखा कि उनकी गालियाँ सुनकर, ताने सुनकर क्रोध आता है या नहीं यह भी देखा कुछ–कुछ आता है। चौथे दिन गुरु जी ने फिर पूछा – युधिष्ठर, पाठ याद हुआ कि नहीं ?

युधिष्ठर ने हाथ जोड़कर सिर झुका दिया और धीर से बोले – नहीं गुरु जी, अभी पूर्ण रुप से याद नहीं हुआ। बस कुछ याद हुआ है ।

गुरु जी ने चपत मारने शुरु कर दिये। युधिष्ठर खड़ा मुस्कुराता रहा। गुरु जी हाँफने लगे, थककर रुके तो वह अब भी मुस्कुरा रहा था। आश्चर्य से बोले – अरे, तू अब भी मुस्कुरा रहा है ?

युधिष्ठर ने कहा – आपने ही तो सिखाया था गुरु जी ! "क्रोध मत करो।" अब मैं कह सकता हूँ कि आपका सिखाया हुआ पाठ मुझे याद हो गया है।

गुरु जी ने आगे बढ़कर उसे छाती से लगा लिया, बोले – अब समझा हूँ। तुम इस पाठ को सदा से जानते थे मैं ही भूल गया था। तुम पास हो गये हो, मैं फेल हो गया हूँ ।

क्रोध मत कर – यह पहली शिक्षा है जो हमको दी जाती है। इससे आवश्यक शिक्षा शायद कोई नहीं है क्योंकि यह क्रोध बहुत बड़ा चाण्डाल है।

क्या करे शतक कुसंग

श्री घनश्यामदास बिड़ला ने एक बार गाँधीजी से कहा – "महात्माजी, आपके इर्द–गिर्द के लोगों में कितने बुरे आदमी भी आ गये हैं।" इस पर गाँधीजी हँसते हुए कहा – तो इसका मुझे क्या डर है। मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता। जो मुझे धोखा देने में अपने को दक्ष समझते हैं वे स्वयं अपने आपको धोखा देते हैं। मैं तो शैतान के पास भी रहने को तैयार हूँ, किन्तु शैतान मेरे पास कैसे रहेगा? जो बुरे हैं, वे स्वयं मुझे त्याग देंगे।

हुआ भी ऐसा ही, कितने ही लोग गाँधीजी के साथ हुए, कुछ देर चलें, अपनी दुर्बलताओं से अन्त में इधर–उधर भटक गए किन्तु, गाँधीजी अपने पथ पर बढ़ते ही गये। बुरे लोगों से बचने की धुन में भागने–फिरने की आवश्यकता नहीं। खुद में सच्चाई चाहिए, या तो बुरे–भले बन जायेंगे, या वे खुद भाग जायेंगे ।

क्षमा के लिये भावना

यूनान के प्रसिद्ध मनीषी अरस्तू से एक दिन किसी ने कहा कि अमुक व्यक्ति ने आप की अनुपस्थिति में आपको गाली दी । अरस्तू ने हँसकर कहा – "वह मूर्ख चाहे तो मेरी अनुपस्थिति में मुझे पीट भी सकता है । पीठ पीछे होने वाली निन्दा की ओर ध्यान देना व्यर्थ है।

क्षमादान

स्वामी उग्रानन्दजी बड़े सहिष्णु और सबमें भगवान को देखने वाले थे। एक बार वे किसी गाँव के बाहर एक पेड़ के नीचे ब्रह्मानन्द की मस्ती में पड़े हुए थे। उसी रात उस गाँव के किसी किसान के बैल चोरी हो गये। लोग चोर की तलाश में निकले। ढूँढते–ढूँढते वे स्वामीजी के पास पहुँचे। उन्होंने स्वामीजी को चोरों का साथी समझकर खूब मारा । उनके मुँह से खून तक बहने लगा। मगर स्वामीजी बिल्कुल शान्त रहे। लोगों ने स्वामी जी को रात–भर एक कोठरी में बन्द रखा। सुबह होने पर उन्हें थाने में ले गये । थानेदार स्वामीजी को अच्छी तरह से जानता था और उनका भक्त था । स्वामीजी को आता देखकर, वह भागा हुआ आया और उनके चरणों में गिरकर प्रणाम किया । यह देखकर गाँववाले बहुत घबराये । थानेदार ने सिपाहियों को हुक्म दिया – मारों इन दुष्टों को स्वामी जी को कैसे पकड़कर लाये । किसान लोग थर–थर काँपने लगे । जब सिपाही उन्हें पकड़ने को दौड़े तो स्वामीजी ने उन्हें रोका और थानेदार से कहा – देख ! जो त् मेरा प्रेमी है तो इन्हे बिल्कुल कष्ट न दें और इन्हें मिठाई मंगाकर खिला । थानेदार ने बहुत कुछ कहा मगर स्वामीजी नहीं माने । उन्होंने थानेदार से मिठाई मंगाकर उन्हें खिलाई और गाँव को सकुशल लौट जाने दिया।

महात्मा गाँधी की सहनशीलता

एक बार महात्मा गाँधी चम्पारण से बेतिया रेल के तीसरे दर्जे में जा रहे थे। रात को किसी स्टेशन से एक किसान उसी डिब्बे में चढ़ा । महात्माजी को धक्का देता हुआ बोला – "उठकर बैठो ! तुम तो ऐसे पसरे पड़े हो जैसे गाड़ी तुम्हारे बाप की है ।"

महात्माजी उठकर बैठ गये । पास ही किसान बैठ गया । कुछ देर बाद इत्मीनान से गाने लगा ।

"धन्य धन्य गाँधीजी महाराज दुःखी का दुःख मिटाने वाले ।"
महात्मा गाँधी उसका गीत सुनकर मुस्कुराते रहे ।

बेतिया स्टेशन पर महात्माजी के स्वागत के लिए हजारों लोग आए हुए थे। गाड़ी के स्टेशन पर पहुँचते ही आसमान जयकारों से गूंजने लगा। अब किसान को अपनी भूल का पता लगा। वह गाँधीजी के पैरों पर गिर पड़ा और फूट–फूट कर रोने लगा। महात्माजी ने उसे उठाया और आश्वासन दिया।

(सन्त विनोद)

कटु वचन को क्षमा

ईसा से एक आदमी कटु वचन बोल रहा था और वे उससे नम्र और मधुरता से बातें कर रहे थे ।

एक दूसरे आदमी ने देखा तो कहा – आप इस दुष्ट से ऐसी नरमी का बर्ताव क्यों कर रहें हैं ?

ईसा ने हँसकर कहा – "वस्तु में से वैसा ही रस तो टपकेगा, जैसा कि उसमें होगा।"

क्षमा की विजय

पैठण नगर में एक पठान गोदावरी स्नान करके आने वालों को तंग किया करता था।

श्री एकनाथ महाराज को भी बहुत कष्ट देता था और लोग तो कुछ भला–बुरा कहते थे , मगर एकनाथजी कभी कुछ कहते ही नहीं थे।

एक दिन जब एकनाथजी स्नान करके आ रहे थे तो पठान ने उनके ऊपर कुल्ला कर दिया । वे शान्त भाव से फिर स्नान करने लौट पड़े । जब स्नान करके उधर से गुजरें तो पठान ने उन पर फिर कुल्ला कर दिया । वे उसी तरह फिर नहाने चल दिए । मगर पठान अपनी दुष्टता से बाज नहीं आया । उसने उन पर इस तरह 108 बार कुल्ला किया और हर बार एकनाथजी को स्नान करना पड़ा।

अन्त में संत की क्षमा की विजय हुई । पठान को अपने काम पर शर्म आयी। वह एकनाथजी के पैरों में गिर पड़ा और बोला – "आप खुदा के सच्चे बन्दे हैं । मुझे माफ कर दें । आइन्दा मैं कभी किसी को तकलीफ नहीं दूंगा ।"

सन्त बोले – "इसमें माफी माँगने की क्या बात है। आपकी कृपा से आज मुझे 108 बार स्नान का पुण्य प्राप्त हुआ"।

क्रोध पर प्रेम की विजय

विश्वामित्र वास्तव में बहुत क्रोधी थे। क्रोध में उन्होंने सोचा – मैं इस वशिष्ठ को मार ही डालूँगा। फिर मुझे ब्रह्मर्षि की जगह राजर्षि कहने वाला कोई रहेगा ही नहीं। ऐसा सोचकर, वह एक छुरा लेकर उस वृक्ष पर जा बैठे, जिसके नीचे बैठकर महिर्ष वशिष्ठ अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। शिष्य आये, वृक्ष के नीचे बैठ गये। वशिष्ठ आये, अपने आसन पर विराजमान हो गये। शाम हो गई। पूर्व के आकाश में पूर्णमासी का चाँद निकल आया। विश्वामित्र सोच रहे थे कि अभी तक विद्यार्थी चले जायेंगे। अभी मैं नीचे उतरुँगा – एक ही बार में अपने शत्रु का अन्त कर दूँगा। तभी एक विद्यार्थी ने नये निकलते हुए चाँद की ओर देखकर कहा – कितना मधुर चाँद है वह। कितना सुन्दरता है उसके अन्दर।

वशिष्ठ ने चाँद की और देखा, बोले – यदि तुम ऋषि विश्वामित्र को देखो तो इस चाँद को भूल जाओ। यह चाँद सुन्दर अवश्य है परन्तु ऋषि विश्वामित्र इससे भी सुन्दर हैं। यदि उनके क्रोध का कलंक न हो तो वे सूर्य की भाँति चमक उठें।

विद्यार्थी ने कहा – परन्तु महाराज ! वे तो आपके शत्रु हैं । स्थान–स्थान पर आपकी निन्दा करते हैं ।

वशिष्ठ बोले, मैं जानता हूँ। परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि वे मुझसे अधिक विद्वान हैं। मुझसे अधिक तप उन्होंने किया है। वे मुझसे अधिक महान हैं। मेरा माथा उनके चरणों में झुकता है।

वृक्ष पर बैठे विश्वामित्र, इस बात को सुनकर चौंक पड़े। वह बैठे थे इसलिये कि वशिष्ठ को मार डाले और वशिष्ठ थे कि उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे। एकदम वे नीचे कूद पड़े , छुरे को एक ओर फेंक दिया। वशिष्ठ के चरणों में गिरकर बोले – मुझे क्षमा करो । वशिष्ठ प्यार से उन्हें उठाकर बोले – उठो ब्रह्मर्षि । विश्वामित्र ने आश्चर्य से कहा – ब्रह्मर्षि ? आपने मुझे ब्रह्मर्षि कहा ? परन्तु आप तो ये मानते नहीं हैं।

वशिष्ठ बोले – आज से तुम ब्रह्मर्षि हुए महापुरुष, तुम्हारे अन्दर जो चाण्डाल था, निकल गया।

यह क्रोध बहुत बुरी बला है। सवा करोड़ नहीं सवा अरब बार गायत्री का जाप कर लें। एक बार का क्रोध इसके सारे फल को नष्ट कर देता है ।

संभवन्ति महाविघ्ना इह निःश्रेयसार्थिनाम् ।
ते चेत् किल समायातः समत्वं संश्रयाम्यतः ।54।

यहाँ जो मोक्ष के अभिलाषी हैं, उनके मार्ग में बहुत बड़े विघ्नों की सम्भावना है । तब यदि वे विघ्न आकर उपस्थित हुए हैं तो मैं समताभाव का आश्रय लेता हूँ – उनके कारण क्षोभ को प्राप्त होना उचित नहीं हैं।

चेन्मामुद्दिश्य भ्रश्यन्ति शीलशैलात्तपस्विनः ।
अमी अतो ऽत्र मज्जन्म परध्वंसाय केवलम् ।55।

यदि मेरा उद्देश्य करके–मुझे मार्ग भ्रष्ट होता हुआ देखकर – ये तपस्वी शीलरुप पर्वत से गिरते हैं तो फिर यहाँ मेरा जन्म–उत्पन्न होना – केवल दूसरों के विनाश का ही कारण होगा

प्रागंमया यत्कृतं कर्म तन्मेयैवोपभुज्यते ।
मन्ये निमित्तमात्रोऽन्यः सुखदुःखोद्यतो जनः ।56।

मैंने पूर्व में जो कर्म किया है, उसका फल मुझे ही भोगना है । यदि कोई अन्य प्राणी मेरे उस सुख या दुख का उद्यत होता है तो उसे मैं केवल निमित्त मात्र ही मानता हूँ।

मदीयमपि चेच्चेतः क्रोधाधैर्विप्रलभ्यते ।
अज्ञातज्ञाततत्त्वानां को विशेषस्तदा भवेत् ।57।

यदि मेरा भी मन इस क्रोधोदि कषायों के द्वारा ठगा जाता है अर्थात् वस्तुस्वरुप को जानते हुए भी यदि मैं क्रोधादि कषायों के वशीभूत होता हूँ तो फिर अतत्त्वज्ञ और तत्वज्ञ इन दोनों में भला भेद ही क्या रहेगा ? कुछ भी नहीं।

न्यायमार्गोपन्नेऽस्मिन् कर्मपाके पुरः स्थिते ।
विवेकी कंस्तदात्मानं क्रोधादीनां वशं नयेत् ।58।

यह कर्म का फल जब न्याय मार्ग से संगत है तब उसके उपस्थित होने पर कौन–सा विवेकी जीव अपने को क्रोधादि कषायों के वश में ले जाता है। विशेषार्थ–अभिप्राय यह है कि प्राणी ने अच्छा या बुरा जो भी कर्म किया है उसका सुख–दुःख रुप फल उसे न्यायमार्ग से भोगना ही चाहिए, ऐसी अवस्था में यदि वह पूर्वकृत कर्म का फल किसी के निमित्त से आकर उपस्थित हो जाता है तो मुझे उस निमित्त के ऊपर क्रोध क्यों करनाा चाहिए ? नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसका फल तो मुझे किसी न किसी निमित्त के आश्रय से अनिवार्य रुप से भोगना ही था। ऐसा विचार कर संयमी जीव किसी के भी ऊपर क्रोध नहीं करता है।

सहस्व प्राक्तनासातफलं स्वस्येन चेतसा ।
निष्प्रतीकारमालोक्य भविष्तद्दुःखशंकितः ।59।

हे आत्मन् ! तू पूर्वकृत असातावेदनीय के फल को प्रतीकाररहित देखकर आगामी दुःख से भयभीत होता हुआ शांत चित्त से सह!

दुःख के उपस्थित होने पर साधु विचार करता है कि हे आत्मन् ! तूने पूर्व में जिस असातावेदनीय कर्मको उपार्जित किया है उसका यह दुःख रुप फल, इस समय प्राप्त हुआ है। अतएव तू उसे प्रतीकार रहित देखकर शान्तचित्त से सह। और यदि तू उस न्यायप्राप्त दुःख को शांति–चित्त से नहीं सहता है तो पुनः असातावेदनीय का बंध अनिवार्य होने से तुझे भविष्य में फिर भी दुःख सहना पड़ेगा। अतएव उससे भयभीत होकर तू इस न्यायप्राप्त दुःख को समताभाव से सहन कर।

क्षमावीर महावीर

भगवान् महावीर एक बार श्वेताम्बिका नगरी की ओर जा रहे थे। इस सुरम्य प्रदेश में इधर–उधर चहुं और प्रकृति का वैभव बिखरा हुआ था। भगवान् के तपस्तेजोमय देदीप्तमान देह की आत्मा वन प्रदेश पर छिटक रहीं थी। भगवान् आत्म–भाव की मस्ती में झूमते चले जा रहे थे।

मार्ग में कुछ गोपाल चरवाहे मिले । उन्होंने प्रभु से निवेदन किया –

"मुनिवर, इधर न जाइये । इधर कुछ दूर आगे निर्जन प्रदेश में महाभयंकर 'चण्डकौशि' सर्प रहता है । वह दृष्टिविष है । देखने भर से दूर–दूर तक के वायुमण्डल को विषाक्त बना देता है ।

भगवान् मौन रहे । आगे बढ़ने लगे ।

"भिक्षु हम तुम पर दया लाकर ही यह सब कह रहे हैं। क्यों, व्यर्थ में अपना जीवन नष्ट करते हो। अधिक हठ करना अच्छा नहीं होता।"

"मैं हठ कहाँ कर रहा हूँ। मैं पथिक हूँ अपने गन्तव्य पथ की ओर जा रहा हूँ।"

"आपको इधर जाना ही है तो इस दूसरे मार्ग से जा सकते हैं। सर्प के भय से लोग फेर खाकर भी इसी दूसरे मार्ग से बचकर जाते हैं ।"

"मैं किसी भी प्रकार के भय से इधर–उधर मार्ग नहीं बदलता। मैं भयमुक्ति की साधना में संलग्न तपस्वी हू। जीवन में सिंहवृत्ति का आदर्श लेकर घर से निकला हू।"

"चण्डकौशिक के आगे बेचारा सिंह क्या कर सकता है ? वह तो अपनी एक ही फुंकार में बलवान से बलवान प्राणी को भी सदा के लिए पृथ्वी पर सुला देता है ।"

"जहर का असर पर (दूसरे) ही पर तो होता है, अमृत पर तो नही। संसारी जीव अन्दर में विकारों के विष से लबालब भरे होते हैं, अतः बाहर के जहर से भी काँपते है। परन्तु अमृतत्व के साधक पर चण्डकौशिक का क्षुद्र जहर क्या असर करेगा ? कभी आत्मा को आत्मा से भी भय हुआ है ? भय का दर्शन

विजाति के सम्बन्ध में होता है, स्वजाति के सम्बन्ध में नहीं। चण्डकौशिक भी तो मेरी ही तरह एक आत्मा है।"

"झूठी फिलासफी बघारने में क्या रखा है ? वहाँ जाना है, तो जीवन की आशा न रखिए, मृत्यु को आगे रखकर जाइए । आप जैसे सैकड़ों साहसी वहाँ गए तो है, पर लौटा कोई नहीं।"

"बहुत ठीक! यदि मेरे जीवनोत्सर्ग से सर्प को कुछ भी परिबोध हो सका, वह शान्त हो सका, तो यह लाभ क्या कुछ कम है? मैं जा रहा हूँ, आप मेरी चिन्ता न करें।"

गोपाल रोकते ही रहे, परन्तु भगवान आगे बड़ गये। चण्डकौशिक के निवास स्थान पर पहुँचकर भगवान कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान लगाकर खड़े हो गये। कौशिक फुँकार मारता हुआ बांबी बिल से बाहर निकला। भगवान पर इसका जरा भी असर न हुआ। कौशिक क्षुब्ध हो उठा, पूरे वेग से उसने फुँकार मारी, फिर भी कुछ न हुआ। अब तो वह अपनी असमर्थता पर खीज उठा। भरपूर आवेश में आकर चरणों में दँश भी मारा। फिर भी कुछ असर नहीं – कौशिक स्तब्ध हो गया, यह क्या ?

"नागराज! किस दुविधा में हो ? जैसे चाहो, काट सकते हो, जी भर काट सकत हो। मैं तुम्हारे सामने हूँ, जाता नहीं हूँ।"

कौशिक टकटकी लगाए देखता रहा ।

"कौशिक, दूसरे पामर जीवों को सताने से क्या .... लाभ ? मैं प्रसन्नता के साथ तुम्हें अपना समस्त शरीर अर्पण कर रहा हूँ। कोई शीघ्रता नहीं, खूब तसल्ली के साथ प्यास बुझा सकते हो, तृप्त हो सकते हो।"

कौशिक महावीर को एक टक देखता रहा ।

"भद्र किस असमंजस्य में हो ? मुझे दुःख है कि तुमने व्यर्थ ही क्यों सैकड़ों मनुष्यों को सताया, कष्ट पहुँचाया, जीवन से हीन किया ? तुम्हें पता नहीं इस दुष्कर्म का क्या परिणाम होगा ? पूर्वजन्म के पापों ने तुम्हें सर्प बनाया , अब के पाप तुम्हें क्या बनायेंगे ? जरा सोचो समझो तो सही ।"

कौशिक टकटकी लगाए देखता – सुनता रहा।

"देवानुप्रिय, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। संभल जाओ क्रोध की प्रकृति को छोड़ दो। जीवन की सार्थकता, दूसरों को कष्ट पहुँचाने में नहीं, सुख पहुँचाने में है। दुर्भावनावश यदि तुम किसी को सुख नहीं पहुँचा सकते, तो कम से कम दुःख तो न पहुँचाओं।"

भगवान महावीर गंभीर, शान्त एवं क्षमा से ओतप्रोत होकर सर्प को सम्बोधन करते हुए बोले – हे नागराज ! शान्त चित्त से विचार कर कि तुम पूर्वभव में क्या थे ? आप

पूर्वभव में एक संघ के अधिनायक आचार्य थे। एकदा आपका एक शिष्य अनुशासन विहीन होने के कारण उसको अनुशासित करने के लिए आपने समझाया, परन्तु उसने आपकी बात नहीं सुनी। तब आप क्रोधित होकर उस शिष्य को मारने के लिए दौड़ पड़े। आपका शिष्य वहाँ से भाग निकला। आप दौड़ते हुए ठोकर खाकर गिर गये। उस क्रोधित अवस्था में आपका कुमरण होने से एवं क्रोध कषाय के कारण आप अभी सर्प योनि में जन्म लिये हैं, इसलिये क्रोध कषाय को त्याग करो । क्षमा समता भाव को स्वीकार करो। क्रोध जीव का महाशत्रु है । क्रोध के कारण जीव को इस भव परभव में अनेक दुःख अनुभव करना पड़ता है । महावीर भगवान् की दयामयी अमृत पूर्णवाणी की वर्षा से भयंकर सर्पराज प्लावित होकर शीतल शान्त हो गया।

भगवान् के सुधा भरे शीतल वचनों से नागराज कुछ–कुछ होश में आया। विचार सागर में डूब गया। सहसा उसे पूर्वजन्म का भान हो आया। पूर्व पापों का दृश्य, चलचित्र की तरह उसकी आँखों के सामने झलकने लगा। हृदय विकल हो उठा। भगवान् के चरणों में वह मस्तक टेक देता है। अपने कृत अपराध की दीन–भाव से क्षमा माँगने लगता है। सर्पराज का प्रस्तर हृदय आज दयालदेव की दिव्य दया दृष्टि से पिघल उठा। वह बार–बार प्रभु को देखता जाता है, रोता जाता है। अन्तर की चिर संचित ताप–कालिमा आज मानों आँखों से आँसुओं के रुप में झर–झर कर बाहर बह निकली।

भगवान् ने सान्त्वना दी , दया का उपदेश दिया । नागराज ने आज से किसी भी प्राणी को कुछ भी पीड़ा न देने का प्रण लिया ।

भगवान् , चण्डकौशिक को प्रतिबोध देकर श्वेताम्बरी की ओर चले गये। नागराज विष के स्थान में अमृत का पाठ पढ़ने लगा। लोग आश्चर्य में थे कि यह क्या हुआ? आस–पास के उजड़े हुए तापसाश्रम फिर बस गये थे । जिस सर्प से एक दिन देश का देश भयग्रस्त था, जिसे मारने के लिये वह मन्त्र–तन्त्रों के अनेकानेक प्रयोग कर रहा था, आज वही उसकी पूजा के सामान जुटा रहा था। सर्पराज की घर–घर पूजा हो रही थी। भगवान् उसे विषधर सर्प की जगह सर्प से अमृतधर देव जो बना चुके थे। (महावीर सिद्धान्त और उपदेश)

अक्षमा भाव का फल

ईर्ष्यापूर्णविचारास्तु सततं दुःखदायिनः ।
मनसा ताचंहीहि त्वं तदभावे हि धार्मिता ।।

ईर्ष्या के विचारों को अपने मन में न आने दो, क्योंकि ईर्ष्या से रहित होना धर्माचारण का एक अंग है ।

अखिलेर्ष्याविनिर्मुक्तस्वभावरसदृशं पुनः ।
नास्ति भद्रमहो पुंसां विस्तृते जगतीतले ।।

सब प्रकार की ईर्ष्या से रहित स्वभाव के समान दूसरा और कोई बड़ा वरदान नहीं है ।

यस्य नास्ति धने प्रीतिर्धर्मे चात्यहितंकरे ।
स ईर्ष्यति सदा वीक्ष्य समृद्धं प्रतिवेशिनम् ।।

जो मनुष्य धन या धर्म की परवाह नहीं करता, वही अपने पड़ौसी की समृद्धि पर डाह करता है ।

ईर्ष्याथा कुरुते नैव परहानिं विचक्षणः ।
ईर्ष्याजन्यविकाराणं ह्युदर्क वेत्ति तत्ववित् ।।

समझदार लोग ईर्ष्याबुद्धि से दुसरों को हानि नहीं पहुँचाते, क्योंकि उससे जो खोटा परिणाम होता है, उसे वे जानते हैं ।

ईर्ष्यैवालं विनाशाय तदाश्रयंप्रदायिनः
मुचेद्धा तं रिपुर्जातु नत्वीर्ष्या सर्वनाशिनी ।।

ईर्ष्यालु के लिये ईर्षा ही बुरी बला है, क्योंकि उसके बैरी उसे चाहे क्षमा भी कर दें तो भी वह उसका सर्वनाश ही करेगी ।

परस्मै यच्छते पुंसे यः ईर्ष्यति नराधमः ।
भृशं दुःखायते तस्य कुटुम्बं कशिपोः कृते ।

जो मनुष्य दूसरों को देते हुए नहीं देख सकता, उसका कुटुम्ब रोटी और कपड़ों तक के लिये मारा–मारा फिरेगा और नष्ट हो जायेगा ।

विजहाति स्वयं लक्ष्मीरीर्ष्यादूषितचेतसम् ।
अर्पयते च तं स्वस्याः पूर्वजायै दूराशयम् ।।

लक्ष्मी ईर्ष्या करने वाले के पास नहीं रह सकती वह उसकी अपनी बड़ी बहिन दरिद्रता की देखरेख में छोड़कर चली जायेगी ।

अतिदुःखकारी नूनं दानवीव दरिद्रता ।
इयमीर्ष्या च तछूती नरकद्वारदर्शिनी ।।

दुष्टा ईर्ष्या दरिद्रता दानवी को बुलाती है और मनुष्य को नरक के द्वार तक ले जाती है ।

ईर्ष्यावती समृद्धस्वं दानिनांच दरिद्रता ।
विवेकिनां मनस्येते समाने विस्मयावहे ।।

ईर्ष्या करने वालों की समृद्धि और उदारचित्त पुरुषों की कंगाली ये दोनों ही एक समान आश्चर्यजनक है ।

ईर्ष्यया क्वापि नो काश्चित पुष्पितः फलितोऽयवा ।
तयैवोदारचेतास्तु ताम्यां क्वापि न वचिंतः ।।

न तो ईर्ष्या से कभी कोई फूला–फला और न उदार हृदय कभी वैभव से हीन रहा है ।

(कुरल काव्य)

क्रोध ही चण्डाल

एक साधु जी किसी भंगी से छू गये। चिल्लाया 'अन्धा हो गया, देखकर नहीं चलता, अब मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा।'

"तुझे क्यों स्नान करना पड़ेगा ?"

"सबसे अपवित्र चाण्डाल क्रोध है। उसने आपके अन्दर घुसकर मुझे छू लिया है। इसलिये मुझे नहाकर पवित्र होना पड़ेगा।"

साधु जी पानी–पानी हो गये ।

(सन्त विनोद)

क्रोध कराये अविचारित कार्य

श्रमण भगवान महावीर की धर्म–देशना श्रवण कर सम्राट श्रेणिक और महारानी चेलना राजमहल को लौट रहे थे । नदी के तट पर कड़ाके की सर्दी में एक तपस्वी मुनि को ध्यान –मुद्रा में खड़े देखा तो महाराज और महारानी ने श्रद्धाप्रवण भाव से नमस्कार किया । सर्दी और हवा के झोंके कलेजा चीर रहे थे, हाथ–पाव ठिठुरे जा रहे थे । बहुमूल्य ऊनी वस्त्रों में लिपटी हुई भी रानी की देह मालती लता की तरह थर–थर काँप रही थी और उस भयंकर सर्दी में भी वह नग्न देह तपस्वी मुनि शैल–शिखर की तरह ध्यान में अचल खड़ थे। तपस्वी को धन्य–धन्य करते हुए रानी चेलना का रथ महलों की ओर बढ़ गया। रानी के स्मृति पट पर शीत से जूझते हुए तपस्वी का वह भव्य साधना चित्र बार–बार उभर आता और वह भाव–विव्हल होकर प्रणाम–मुद्रा में सहसा धन्य–धन्य कह उठती।

पौष महीने की भयानक शीत रात्रि में रानी चेलना ऊपरा–ऊपरी अनेक कम्बलों से शरीर को सब तरफ से ढके हुए शयन–कक्ष में सो रही थी। नींद में उसका एक हाथ कम्बल से बाहर खुला हो गया। कुछ देर बाद रानी की नींद खुली तो देखा कि ठण्ड के कारण हाथ अकड़ गया है। रानी चित्कार कर उठी – अहो ! कितनी भयंकर सर्दी है और फिर नदी के किनारे खड़े उस तपोधन मुनि की कल्पना स्मृति–पट पर सहसा उतर आई । रानी के मुँह से भावावेश में निकल पड़ा । "अहो" इस समय उनका क्या हाल होगा ?

सम्राट श्रेणिक अर्धनिद्रित से करवट बदल रहे थे । चेलना के ये शब्द – "उनका क्या हाल होगा ?" सम्राट के हृदय में अटक गए । जरुर यह किसी अन्य पुरुष से प्रेम

कर रही है। नींद में भी उसी के बारे में इसका चिन्तन चल रहा है जो बात जागते हुए मुह से नहीं निकलती वह कभी–कभी नींद की बेहोशी में सहजतया निकल जाती है। रानी के दुश्चरित्रा होने के बारे मे सम्राट का मन एका–एक संदिग्ध हो उठा। सोचा – जब मेरी प्राणप्रिया राजमहिषी का भी यह हाल तो अन्य रानियों के चिरत्र के सम्बन्ध में मैं क्या विश्वास करुं। स्त्री का चरित्र बड़ा विलक्षण होता है। बस दुष्कल्पनाओं में सम्राट का मन संशयाकुल हो गया,नींद हराम हो गई।

सम्राट प्रातः होते ही राजमहल से नीचे आए। मन में भारी उथल–पुथल मची थी। चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। विवेक पर बहम का काला पर्दा ऐसा गिरा कि कुछ भी सोच न सके। महामन्त्री अभय कुमार को बुलाकर कहा –अभय! रानी सहित पूरे अन्तःपुर को अभी के अभी जला डालो। तुरन्त मेरे आदेश का पालन होना चाहिये। आदेश देकर सम्राट दमदमाते हुए आगे बढ़ गये।

अभय कुमार बुद्धिमान था। वह सम्राट के क्रोध को समझता था। क्रोध में मनुष्य विवेक खो बैठता है। अविवेक से किया गया कार्य अन्त में दुखदायी होता है। उसने राजमहल के पास में खड़े गजशाला के झोपड़े खाली करवाए और उनकी होली जला डाली। सम्राट के आदेश का पालन भी हुआ और भयंकर दुर्घटना भी होते–होते बच गई।

आदेश देकर सम्राट नगर से बाहर चले गये थे। इधर–उधर वन प्रदेश में घूमते रहे। परन्तु उनके मन में वह बहम बार–बार तीखे काँटे की तरह खटक रहा था उन्हें शान्ति नहीं मिल रही थी। आखिर समाधान के लिए श्रमण भगवान महावीर की धर्मसभा में पहुँचे। चरण–वन्दना की और सांकेतिक शब्दों में पूछा – प्रभो ! वैशाली गणराज्य के स्वामी चेतक की पुत्री के एक पति है या अनेक पति ?

प्रभु महावीर ने कहा – राजन्, चेतक की एक क्या, सातों ही पुत्रियों का एक–एक ही पति है सती साध्वी हैं । तुम्हारे अन्तःपुर की समस्त रानियाँ पवित्र तथा पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली हैं ।

सम्राट प्रभु की वाणी सुनते ही दिङ्मूढ़ से देखते रह गये ! प्रभु महावीर ने सम्राट के मन का सन्देह मिटाते हुए कहा – राजन् ! कल तुमने चेलना के साथ नदी के तट पर तपस्या करते हुए किसी मुनि के दर्शन किये थे ?

हाँ , प्रभु ! किये थे श्रेणिक ने कहा । "रात्रि में जब रानी का एक हाथ कम्बल से बाहर रह गया और सर्दी के कारण ठिठुर कर अकड़ गया तो उसकी पीड़ा का अनुभव करती हुई रानी ने अपनी स्थिति से उस मुनि की स्थिति की तुलना की और तब एका–एक उसके मुँह से निकला – इस सर्दी में उनका क्या हाल होगा ? राजन् उसकी यह उक्ति किसी अन्य पुरुष के लिए नहीं थी – भगवान ने घटना का मर्म खोला ।

सम्राट के क्रोध पर सहसा घड़ों पानी गिर पड़ा। मेरे आदेश से कहीं भयंकर अनर्थ न हो गया हो। इसी आकुलता से वे बिना और कुछ पुछे सहसा राजमहल की ओर दौड़ पड़े ज्योंहि राजमहल के स्थल से आग की गगनचुम्बिनी ज्वालाओं को देखा, तो उनका चेहरा फक् हो गया। यह क्या? अरे! सर्वनाश हो गया। स्त्री हत्या, वह भी निरपराध ! पाप ! महापाप!

अभय कुमार मार्ग में ही सम्राट को मिल गया, सम्राट ने कहा – "अभय! तू भी आज मूर्ख हो गया। अनर्थ कर डाला तूने? कितना भयंकर पाप? अबलाओं को जीवित अग्निदाह? मूर्ख ! चला जा मेरी आँखों के सामने से ।"

अभय कुमार को चले जाने का आदेश मिला, अभीष्ट ही मिल गया। वह तो इसी आदेश की प्रतीक्षा में था क्योंकि वह दीक्षा लेना चाहता था। और सम्राट रोकते थे। अब वह चल पड़ा वहाँ जहाँ इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण आदेश न मिलते हों। प्रभु महावीर के चरणों में पहुँचकर अभय कुमार मुनि बन गया।

राजमहल के पास पहुँचकर सम्राट को जब सही स्थिति मालूम हुई, तो अभय की बुद्धिमानी पर बाग–बाग हो गये और साथ ही लज्जित हो उठे अपनी मूर्खता पर। निष्कारण इतना भयंकर वहम। इतना उतावलापन। इतना अविवेक। उनके अविवेक से यदि सचमुच ही दुर्घटना हो जाती तो कितना अनर्थ हो जाता? इसकी कल्पना से ही सम्राट का दिल दहल उठा। उन्हें अपनी भूल पर पश्चाताप होने लगा । 'उतावला सो बावला' की लोकोक्ति रह–रह कर उनकी स्मृति में टकराने लगी ।

(जैन श्वे. साहित्य)

क्रोध त्याग

सत्यां निग्रहशक्तो हि क्रोधत्यागः सुशोभते ।
यतः शक्तिविहीनस्य क्षान्त्याऽक्षान्त्या च किं भवेत ।1।

क्रोधत्याग परिच्छेद कुरल काव्य पृष्ठ 31

जिसमें चोट पहुँचाने की शक्ति है उसी में सहनशीलता का होना समझा जा सकता है । जिसमें शक्ति ही नहीं है वह क्षमा करें या न करें, उससे किसी का क्या बनता है बिगड़ता है ।

अथ चेन् निग्रहेऽशक्तिस्तदा कोपो निरर्थकः ।
अथ चेन् निग्रहे शक्तिस्तदा कोपो घृणास्पदा : ।2।

यदि तुममें प्रहार करने की शक्ति न भी हो तो तब भी क्रोध करना बुरा है और यदि तुममें शक्ति हो तब तो क्रोध से बढ़कर बुरा काम और कोई नहीं है।

हानिकर्ता भवेत् कोऽपि कोपो हेयस्तथापित सः ।
अनर्था येन जायन्ते शतशो दुःखदायिनः ।3।

तुम्हारा अपराधी कोई भी हो पर उसके ऊपर कोप न करो, क्योंकि क्रोध से सैकड़ों अनर्थ पैदा होते हैं ।

मोदं विहन्ति कोपोऽयमानन्दध्वन्सकारकः ।
अन्यो नास्ति ततः कोऽपि शत्रुर्हानिविधायकः ।4।

क्रोध हर्ष को जला देता है और उल्लास को नष्ट कर देता है। क्या क्रोध से बढ़कर मनुष्य का और भी कोई भयानक शत्रु है।

भद्रनिच्छसि चेद भद्र कोपं मुचं सुदूरतः ।
अन्यथाऽऽक्रम्य शीघ्रं ते स विनाशं विधास्यति ।5।

यदि तुम अपना भला चाहते हो तो रोष से दूर रहो, क्योंकि दूर न रहोगे तो वह तुम्हें आ दबोचेगा और तुम्हारा सर्वनाश कर डालेगा ।

अग्निर्दहति तद्वस्तु तत्पार्श्वे यस्य संस्थितिः ।
भस्मीकरोति कोपस्तु क्रुध्यन्तं सकुटुम्बकम् ।6।

अग्नि उसी को जलाती है जो उसके पास जाता है, परन्तु क्रोधाग्नि सारे कुटुम्ब को जला डालती है ।

निधाय हृदि रोषं यो दिधानमिव रक्षति ।
भूमिं संताड्य हस्तेन पीड़ितः स प्रमत्तवत् ।7।

जो क्रोध को इस प्रकार हृदय में रखता है मानों वह बहुमूल्य पदार्थ हो वह उस मनुष्य के समान है जो जोर से पृथ्वी पर हाथ दे मारता है उस आदमी के हाथों में चोट लगे बिना नहीं रह सकती, ऐसे क्रोधो पुरुष का सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

सम्प्राप्य महतीं हानिं क्रोधाग्नौ संज्वलत्यपि ।
इदं भद्रतरं नूनं यत् कोपादभव दूरगः ।8।

जो तुम्हें हानि पहुँची है वह भले ही तुम्हें प्रचण्ड अग्नि के समान जला रही हो तब भी यही अच्छा है कि तुम क्रोध से दूर रहो ।

त्वरितं तस्य सिध्यन्ति सर्व एव मनोरथाः ।
येन दूरीकृतो नित्यं क्रोधोऽयं शान्तचेतसा ।9।

मनुष्य की समस्त कामनाएँ तुरन्त ही पूर्ण हो जाया करेगी यदि अपने मन से क्रोध को दूर कर दें ।

स्ववशे नैव यश्चण्डः स नूनं मृतसन्निभः ।
यश्च कोपपरित्यागी योगितुल्यो विभातिसः ।10।

जो क्रोध के मारे आपे से बाहर है वह मृतक के समान है पर जिसने कोप करना त्याग दिया है वह सन्तों के समान है ।

पार्श्ववासी यदि ज्ञात्वा कदाचित् कलहेच्छया ।
त्वां बाधते तथापीदं वरं त्रासादवैरिता ।2।

यदि तुम्हारा पड़ौसी जान–बूझकर झगड़ा करने की भावना से तुम्हें सताता है तो भी सर्वोत्तम बात यही है कि तुम अपने हृदय में बदले की भावना न रखो और न उसे बदले में चोट पहुँचाओं ।

कलहस्य चिरोभ्यासो महाव्याधिरहो खले ।
लभन्ते तेन निर्युक्ताः प्रतिष्ठामन्तवर्जितम् ।3।

दूसरे से झगड़ा करनेकी आदत वास्तव में एक दुःखद व्याधि है। यदि कोई व्यक्ति अपने को उससे मुक्त कर ले तो उसे शाश्वत प्रतिष्ठा प्राप्त होगी।

विद्वेषभावनां चित्ताद योहि दूराद व्यपोहति ।
सर्वप्रियः स लोके स्यात्–प्रकृत्या चारुतां गतः ।5।

ऐसे व्यक्ति को कौन न चाहेगा, जिसमें विद्वेष की भावना को दूर करने की योग्यता है?

हृदयं हलादते यस्य विद्वेषे प्रतिवासिनः ।
तस्याधः पतनं शीघ्रममन्दच भविष्यति ।6।

जो आदमी अपने पड़ोसियों के प्रति विद्वेष करने में आनन्द प्राप्त करता है उसका कुछ ही दिनों में अधः पतन हो जायेगा ।

मात्सर्याद यश्च भूपालो सवः साकं विरुह्यते ।
कलहे तस्य लिप्रस्य राज्यवृद्धिः कथं भवेत् ।7।

वह झगडालू स्वभाव का राजा जो सदा झगड़े में लिप्त रहता है उस नीति पर आचरण नहीं कर सकता जिससे राष्ट्र का अभ्युत्थान होता है ।

विग्रहस्य विधेस्त्यागाद्र वैभवं वर्द्धते सदा ।
तस्य संवर्द्धनात् किन्तु व्यृद्धिरेवाभिवर्द्धते ।8।

झगड़े से बचने से समृद्धि प्राप्त होती है और यदि तुम झगड़े को बढ़ाने का मौका दोगे तो शीघ्र ही तुम्हारा पतन हो जायेगा ।

सर्वावेशं जहोत्येव नरः पुण्यस्त वैभवात् ।
अथ पापात् स एवाहो विद्वेषी प्रतिवेशिनम् ।9।

जब भाग्य देवी किसी आदमी पर प्रसन्न होती है,तो वह सब प्रकार की उत्तेजनाओं से बचता है परन्तु उसके भाग्य में यदि विनाश होना बंधा है तो वह अपने पड़ौसियों के प्रति विद्वेष की भावना पैदा करने से नहीं चूकता ।

विद्वेषस्य फलं लोके विद्वेषो हास्ति नापरः ।
भवतः शिषृक्तौ च शान्तिरेव समन्वयः ।10।

विद्वेष का फल बुरा होता है, लेकिन भलाई का परिणाम शान्ति और समन्वयकार्य होता है ।

संभवन्ति महाविघ्ना इह निःश्रेयसार्थिनाम् ।
ते चेत किल समायाताः समत्वं संश्रयाम्यतः ।17।

जो मोक्षाभिलाषी हैं उन्हें इस लोक में बड़े–बड़े विघ्न होने संभव हैं, यह प्रसिद्ध है; वे ही विघ्न यदि मेरे आवें तो इसमें आश्चर्य क्या हुआ? इस कारण अब मैं समभाव का आश्रय करता हूँ, मेरा किसी पर भी राग द्वेष नहीं हैं।

चेन्मामुद्दिश्य भ्रश्यन्ति शीलशैलात्तपश्विनः ।
अमी अतोऽत्र मज्जन्म परक्लेशाय केवलम् ।18।

फिर ऐसा भी विचार करते हैं कि यदि मैं क्रोध करुँ तो मुझे देखकर अन्यान्य तपस्वी मुनि अपने शील स्वभाव से च्युत (भ्रष्ट) हो जाय, तो फिर इस लौक में मेरा जन्म पर के अपकारार्थ वा क्लेश के लिए ही हुआ, इस कारण मुझे क्रोध करना किसी प्रकार भी उचित नहीं हैं।

प्राड्.मया यत्कृतं कर्म तन्मयैवोपभुज्यते ।
मन्ये निमित्तमात्रोऽन्यः सुखदुःखोद्यतो जनः ।19।

फिर ऐसा विचार करते हैं कि मैंने पूर्वजन्म में जो कुछ बुरे –भले कर्म किये हैं उनका फल मुझे ही भोगना पड़ेगा , सौ जो कोई मुझे सुख–दुःख देने के लिए तत्पर हैं वे तो केवल मात्र बाह्य निमित्त हैं, ऐसा मैं मानता हूँ, तब इनसे क्रोध क्यों करना चाहिए ?

शत्रु के ऊपर क्रोध नहीं कर्म के ऊपर क्रोध

दया क्षमा के अवतार महामानव महावीर.स्वउद्धारक के साथ–साथ जगत् उद्धार के लिए समस्त राज–वैभव तृण के समान त्याग करके वन में जाकर, भगवत् सत्ता को प्राप्त करने के लिए कठोर साधना में रत हुए। एकदा महासाधक महावीर जंगल में ध्यान कर रहे थे। उस अवसर पर एक ग्वाला आकर महावीर को लक्ष्य करके बोला – मैं जब तक वापस नहीं आता हूँ, तब तक तुम मेरे पशुओं की देख–रेख कर। मैं वापिस आने के बाद पशुओं को ले जाऊँगां। इस प्रकार कहकर वह चल दिया ।

महावीर तो स्वय लीन होकर स्वय के साथ सम्बोधन करने के लिए इतने तन्मय थे कि बाह्य दुनिया में क्या हो रहा है, कौन क्या बोल रहा है उनको भान तक नहीं था।

ग्वाला जब वापिस आया तब देखा उसके पशु वहाँ पर एक भी नहीं है। तब वह पूछा – मैं तुमकों मेरे पशुओं की देखरेख करने के लिए कहकर गया था। मेरे पशु कहाँ गये बताओं ! तब भी महाध्यानी महावीर स्वंय में लीन होने के कारण उनको कोई प्रकार प्रत्युत्तर नहीं दिए । तब ग्वाला ने क्रोधित होकर लोहा का एक बहुत बड़ छड़ (सलाका) लाया । उस तीक्ष्ण छड़ को महावीर भगवान के कान में डाला एवम् बहुत बड़ा पत्थर लेकर उस छड़ को पीटा । छड़ एक

कान से दूसरे कान तक आर–पार हो गया । तब भी महावीर धैर्य, साहस एवं क्षमा सहित सुमेरु के समान अटल–निष्कम्प रहे ।

महावीर भगवान धीर, गम्भीर, क्षमावान के साथ–साथ महान् आत्मनिरीक्षक, आत्मशोधक थे। वे प्रत्येक कार्य का कारण सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर शोध निकालते थे। इस दुःसह उपसर्ग के समय वे सोचने लगे कि इस उपसर्ग का वाह्य निमित्त ग्वाला है। परन्तु अन्तरंग निमित्त मैं स्वंय हूँ। मेरा पूर्ण उपार्जित पाप कर्म अभी फल दे रहा है। इस पाप फल के लिए उत्तरदायी मैं स्वय हूँ। बेचारा ग्वाला उस पाप कर्म को निर्जरित करने के लिए निमित्त बनकर मेरा उपकार ही किया है।

महावीर भगवान् उस उपसर्गरुपी कटुफल क बीज का जब अन्वेषण किये तब वे पाये उस कटुफल का बीज त्रिपुष्ट नारायण के समय में ही वे बाये थे। वे विचार करने लगे मैं दुष्टात्मा उस समय में त्रिपुष्ट नारायण था। एक दिन मैंने अपने शयनकक्ष में सोने के अवसर पर एक गायक को स्वंय को सुलाने के लिए वीणा बजाकर मधुर गान गाने के लिए नियुक्त किया था। मैं उसको बोला था कि "मेरे सोने के बाद तुम संगीत बन्द कर देना। कुछ समय के अनन्तर मैं मधुर संगीतलहरी सुनते–सुनते निद्रा देवी की गोद में चला गया तो भी गायक संगीत में इतना तल्लीन था कि उसको भान भी नहीं हुआ कि अर्धचक्री शयन कर लिया है। मुझको संगीत बन्द करना है, यह ध्यान नहीं रहा इसलिये वह संगीत ही करता रहा। जब मेरी निद्रा खुली तब मैंने क्रोधित होकर उतप्त तेल उसके कान में निर्दय भाव से डाला। गर्म तेल से वह सन्तप्त होकर मरा। मैंने पहले उसके कान में गर्म तेल डाला था, इसलिये वही पाप बीज आज अंकुरित–पल्लवित होकर इस कटुफल को दिया है। अतः इस यातना का बीजारोपण मैंने ही किया था, अतः यह ग्वाला वस्तुतः दोषी नहीं है मैं ही दोषी हूँ। इसी प्रकार स्वपूर्व–कर्म–अर्जित फल सोचकर महावीर ने समता के साथ–साथ क्षमता भाव से सहन किया।

अनन्तर एक दयालु धर्मात्मा वैद्य महावीर भगवान के कान में किल देखकर अत्यन्त दुःखी हुआ। उसका हृदय दया से पिघल गया। उसने अनेक व्यक्तियों को बुलाकर यन्त्रों के माध्यम से कील निकालकर औषध उपचार किया।

मदीयमपि चेच्चेतः क्रोधाद्यैर्विप्रलुप्यते ।
अज्ञातज्ञात तत्वानां को विशेवस्तदा भवेत् ।20।

(ज्ञानार्वण)

फिर ऐसा विचार करते हैं कि मैं मुनि हूँ, तत्त्वज्ञानी हूँ, यदि क्रोधादिक से मेरा भी चित्त बिगड़ जायेगा तो फिर अज्ञानी तथा तत्त्वज्ञानी में विशेष (भेद) ही क्या रहा? मैं भी अज्ञानी के समान हुआ; इस प्रकार विचार करके क्रोधादि रुप से नहीं परिणमते।

न्यायमार्गे प्रपन्नेऽस्मिन्कर्मपाके पुरःस्थिते ।
विवेकी कस्तदामानं क्रोधादीनां वशं नयेत् ।21।

फिर ऐसा विचारते हैं कि यह जो कर्मों का उदय है, सो न्यायमार्ग में प्राप्त है, इसके निकट होने (आगे आवे) पर ऐसा कौन विवेकी है जो अपने को क्रोधादिक के वश में होने दें ?

सहस्व प्राक्तनासातफलं स्वस्थेन चेतसा ।
निष्प्रतीकारमालोक्य भविष्यददुःखशतिः ।22।

हे आत्मन ! तूने पूर्वजन्म में असाता कर्म बाँधा था उसी का फल यह दुर्वचनादिक है सो इनको उपायरहित समझकर आगामी दुःख की शान्ति के लिए स्वस्थ चित्त को आत्मा में लगाकर सहन कर ।

उद्दीपयन्तो रोषाग्निं बहु विक्रम्य विद्विषः ।
मन्ये विलोपयिष्यन्ति क्वचिन्मत्तः शमश्रियम् ।23।

फिर विचारते हैं कि पूर्वकृत कर्म मेरे बैरी है सो मैं ऐसा मानता हूँ कि वे सब शत्रु अपने उदयरुप पराक्रम से क्रोधादि के उत्पन्न करने वाले निमित्तों को मिलाकर मेरे क्रोधरुप अग्नि उद्दीपन करते हुए मेरी उपशमभावरुपी लक्ष्मीं को लूटेंगे।

अप्यसह्ये समुत्पन्ने महाक्लेशसमुत्करे ।
तुष्यत्यपि च विज्ञानी प्राक्कर्मविलयोद्यतः ।24।

फिर ऐसा विचारते हैं कि जो विज्ञानी पूर्वोपार्जित कर्मों को नाश करने में उद्यत (तत्पर) हुआ है, वह असह्य बड़े–बड़े क्लेशों के प्राप्त होने पर भी सन्तोष ही करता है, क्योंकि जो पूर्व में कर्म उपार्जन किये थे उनका उदय अवश्य होना है, अब उदय आकर खिर गये सो अच्छा हुआ , इस प्रकार सन्तोष कर लेते हैं।

यदिवाक्कण्टकैर्विद्धो नावलम्बे क्षमामहम् ।
ममाप्याक्रोशकादस्मात्को विशेषस्दा भवेत् ।25।

दुर्वचन कहने वाले पुरुषों ने मुझे वचनरुपी काँटों से बीन्धा (पीड़ित किया), अब यदि मैं क्षमा धारण नहीं करुंगा तो मेरे और दुर्वचन कहने वाले में क्या विशेषता होगी ? मैं यदि इसे दुर्वचन कहूँगा तो मैं भी इसके समान हो जाऊंगा, इस कारण क्षमा करना ही योग्य है।

कुत्ता को नहीं काटा जाता

एक दिन ग्रीक के महातत्ववेत्ता, दार्शनिक, सन्त सुकरात के पास उनके एक मित्र आकर विनय से बोला – बन्धुवर ! आपकी महत्ता एवं गुणगरिमा दूसरे व्यक्तियों को मालूम नहीं होने के कारण आपको वे लोग अपमानितकर शब्द बोलकर निन्दा करते हैं । आप ख्यातनामा महामेधावी तत्वविज्ञ होकर भी उसका

कोई प्रतिकार नहीं करते हैं । उनको कुछ प्रतिकारस्वरुप नहीं बोलते हैं इससे उनका साहस बढ़ रहा है जिससे वे आपकी निन्दा कर रहे हैं। तब सुकरात गम्भीर एवं शांत भाव से बोले – यदि कुत्ता मनुष्य को काटता है तो मनुष्य अपने मुख से कुत्ता को नहीं काटता है। इसी प्रकार जो निन्दा करता है वह स्वयं नीच है, दया का पात्र है। निन्दक की निन्दा करना नीच से भी नीच होना है।

विचित्रैर्वधबन्धादि प्रयोगैर्न चिकित्सति ।
यद्यसौ मां तदा क्व स्यात्संचितासातनिष्क्रियः ।26।

यदि कोई मेरा अनेक प्रकार के बध बन्धादि प्रयोगों से इलाज नहीं करे तो मेरे पूर्वजन्मों के संचित किये असाता कर्मरुपी रोग का नाश कैसे हो ।

यः शमः प्राक्समभ्यस्तो विवेकज्ञानपूर्वकः ।
तस्यैतेऽय परीक्षार्थं प्रत्यनीकाः समुत्थिताः ।27।

जो ये दुर्वचन कहने वाले वा वध बन्धनादि करने वाले शत्रु उत्पन्न हुए हैं, वे मानो मैंने भेदज्ञानपूर्वक शमभाव का अभ्यास किया है, उसकी आज परीक्षा करने को ही आये हैं सो देखते हैं कि इसके शमभाव अब है कि नहीं ? ऐसा विचार करना किन्तु क्रोधरुप न होना ।

यदि प्रशममर्यादां भित्वा रुष्यामि शत्रवे ।
उपयोगः कदाऽस्य स्यात्तदा में ज्ञानचक्षुषः ।28।

यदि मैं प्रशमभाव की मर्यादा का उल्लंघन करके बध, बन्धनादि करने वाले शत्रु से क्रोध करुंगा तो इस ज्ञानरुपी नेत्र का उपयोग कौन से काल में होगा? अर्थात यह ज्ञानाभ्यास ऐसे ही काल के लिये था, सो अब शमभाव से रहना ही योग्य है, इस प्रकार विचारते हैं ।

अयत्नेनापि सैवेयं संजाता कर्मनिर्जरा ।
चिनोपायैर्गमानेन यत्कृता भर्त्स्ययातना ।29।

फिर मुनि महाराज ऐसा विचार करते हैं कि इस शत्रु ने मेरा अनेक प्रकार के उपायों से तिरस्कार करके जो तीव्र यातना (पीड़ा) की, इससे यह बड़ा भारी लाभ हुआ कि बिना यत्न किये ही मेरे पापकर्मो की निर्जरा सहज में ही हो गयी। यह उपकार ही मानना, क्रोध क्यों करना?

अपारयन्बोधयितुं पृथग्जनानसत्प्रवृत्तेष्वपि नाऽसदाचरेत् ।
अशक्नुवन्पीतविषं चिकित्सितुं पिबेद्विषःकः स्वयमप्यबाशिलः ।30।

असमीचीन कार्यो में प्रवर्त्तने वाले अन्य पुरुषों को उपदेश करके रोकने में असमर्थ हो तो क्या वह पण्डित पुरुष भी असदाचरण करने लग जाय ? नहीं कदापि नहीं । जैसे कोई पुरुष विष पी जावे और उसकी चिकित्सा करने में वैद्य असमर्थ हो जाय तो ऐसा वैद्य पण्डित कौन है जो आप भी विष पी ले अर्थात्

ज्ञानी पण्डित तो कोई नहीं पीवेगा यदि पीवें तो वह अज्ञानी मूर्ख है ? इसी प्रकार मुनि विचारते हैं कि किसी ने अपने परिणाम बिगाड़कर मेरा बुरा करना चाहा और मैं उसको निवारण करने (समझने) में समर्थ न होऊँ तो क्या अपने परिणाम बिगाड़कर उसी के समान बुरा करना उचित है ? कदापि नहीं ।

गाली देकर मुख गन्दा नहीं करना

एक दिन एक आदमी महामना मालवीय के पास आकर बोला – मालवीय जी! आप मेरे को कितना भी गाली दीजिए म क्रोधित नहीं होऊँगा। आपको अगर विश्वास नहीं होता तो आप अभी परीक्षा करके देख सकते हैं। तब मालवीय जी बोले – मैं आपको दूषित करने के लिये पहले मैं अपना मुख क्यों दूषित करूंगा क्योंकि यदि आपको गाली दूं , तो पहले मेरा मुख ही दूषित हो जायेगा। इसलिये मैं आपकी परीक्षा करने के लिये भी आप अपशब्द नहीं बालूँगा। इसी प्रकार जो दूसरों को कष्ट देता है वह स्वय अपने आत्मा को कलुषित कर लेता है। जैसे दूसरे आदमी के ऊपर हाथ से कीचड़ फेंकने के पहिले अपना हाथ गन्दा हो जाता है उसके बाद जिसको गन्दा करने के लिए सोचते हैं वह गन्दा हो या न हो ?

न चेदयं मां दुरितैः प्रकम्पयेदहं यतेयं प्रशमाय नाधिकम् ।
अतोऽतिलाभोऽयमिति प्रतर्कयन् विचाररूढा हि भवन्ति निश्चलाः ।31।

यदि मुनि को कोई दुष्ट दुर्वचनादिक से उपसर्ग करे तो वह इस प्रकार विचार करता रहे कि यदि वह दुर्वचन कहने वाला मुझे पापों से भय नहीं उपजावे तो मैं शान्तिभाव के लिए अधिक प्रयत्न नहीं करुं ; इस कारण इसने मुझे सावधान किया है कि मैंने पूर्वकाल में जो क्रोधादि पाप किये थे उसी का यह उपसर्ग फल है, सो मुझे यह बड़ा भारी लाभ हुआ; इस प्रकार के विचार में आरुढ होकर मुनि महाराज निश्चल रहते हैं ।

परपरितोषनिमित्तं त्यजन्ति केचिद्धनं शरीरं वा ।
दुर्वचनबन्धनाद्यैर्वयं रुषन्तो न लज्जामः ।32।

फिर मुनि महाराज ऐसा विचार करते हैं कि, पर को सन्तुष्ट करने के लिए अनेक जन अपने धन वा शरीर को छोड़ देते हैं और हम दूसरों के दुर्वचनवध बन्धनादिक से रोष करते हुए क्यों लज्जित नहीं होते ?

हन्तुर्हानिर्ममात्मार्थसिद्धिः स्यान्नात्र संशयः ।
हतो यदि न रुष्यामि रोषचेद् व्यत्ययस्तदा ।33।

किसी ने मुझे मारा और यदि मैं रोष नहीं करुँ तो मारने वाले की तो हानि हुई अर्थात पापबन्ध हुआ, परन्तु मेरे आत्मा के अर्थ की सिद्धि हुई अर्थात् पाप नहीं बन्धा किन्तु पूर्व के किये पापों की निर्जरा हुई, इसमें कोई सन्देह नहीं है और मेरे कदाचित् रोष उपजे तो मेरी द्विगुण हानि होगी अर्थात् एक तो पापबन्ध हो, दूसरे

पूर्वकमा की निर्जरा नहीं होगी इत्यादि विचार करें ।

प्राणात्ययऽपि सम्पन्ने प्रत्यनीकप्रतिक्रिया ।
मता सभि्दः स्वसिद्धयर्थं क्षमैका स्वस्थेचतसाम् ।34।

अपने प्राण का नाश होने पर भी उपसर्ग करनेवाले शत्रु का इलाज स्वस्थचित्त पुरुषों को अपनी सिद्धि के लिये एकमात्र क्षमा करना ही सत्पुरुषों ने माना है ।

क्षमा के लिए साहस चाहिए सहायक नहीं

राजकुमारोचित सुख वैभवों में पोसेपले ज्ञानपुत्र वधमान ने महाविरोचित अन्तिम कोटि की दुष्कर जीवनचर्या अंगीकर की। राजवैभव, देश नगर और कुटुम्ब परिवार को तृणवत् छोड़कर अपने त्यागी जीवन–श्रामण्य को स्वीकार किया और भाई–बन्धुओं से अन्तिम विदा ले ज्ञातखण्ड से आगे प्रयाण कर गये ।

ज्ञातखण्ड से चलकर एक मुहूर्त्त, दिन शेष रहते भगवान कमरिग्राम पहुँचे और रात्रि वहीं बिताने के विचार से कायोत्सर्ग में स्थिर हो गये ।

सन्ध्या के समय वहाँ एक ग्वाला बैलों के साथ आया और बैलों को वहीं छोड़ गाँव में चला गया । जब वह कार्य से निवृत हुआ, गाँव लौटा तो बैल वहां नहीं थे । ध्यानस्थित भगवान् के पास जाकर उसने पूछा – "देवार्य ! क्या आप जानते हैं कि यहां से बैल कहाँ गये हैं।" महावीर की तरफ से गोप को कोई उत्तर नहीं मिला । उसने सोचा – देवार्य को मालूम न होगा । वह चला गया और बैलों की खोज में रातभर जंगल में भटकता रहा पर उसे बैल न मिले ।

सारी रात घूम फिरकर ग्वाला रात्रि के अन्तिम भाग में वहाँ लौटा तो भगवान के निकट बैल बैठे देखकर वह महावीर पर झल्लाकर बोला । बैलों की बात जानते हुए भी तुमने मुझे सारी रात भटकाया है । और हाथ में रास लिए वर्धमान को मारने के लिए दौड़ा पर उसके पाँव वहीं स्तब्ध हो गये । उसी समय वहाँ इन्द्र प्रकट होकर बोले–दुरात्मन ! तुझे इतना भी मालूम नहीं कि, ये राजा सिद्धार्थ के दीक्षित पुत्र वर्धमान हैं ।

इसके पश्चात भगवान् को वन्दन कर इन्द्र ने कहा – "भगवन् ! बारह वर्ष तक आपको विविध उपसर्ग होने वाले हैं अतः आज्ञा दीजिये कि तब तक मैं आपकी सेवा में रहकर कष्ट निवारण किया करुं ।

इन्द्र की प्रार्थना का उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा – देवेन्द्र ! यह कभी नहीं हुआ और न होगा । अर्हन्त देवेन्द्र या असुरेन्द्र किसी के सहारे केवल ज्ञान नहीं पाते किन्तु अपने ही उद्यम,बल, वीर्य और पुरुषार्थ से केवल ज्ञान पाकर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं और होंगे ।

(श्वेता साहित्य)

क्षमा भाव से ज्ञान लाभ

ग्रामक से आप शालिशीर्ष पधारे और उसके बाहर उद्यान में कायोत्सर्ग ध्यान लगाया ।

माघ महीने की कड़ी सर्दी में भगवान् खुले शरीर ध्यान कर रहे थे कि वहाँ कटपूतना नामक एक व्यन्तर देवी आई और भगवान को देखते ही वह द्वेषवश जल उठी । क्षणभर में उसने परिव्राजिका का रुप धारण किया, और बिखरी हुई जटाओं में पानी भर–भर कर भगवान के ऊपर छिड़कने लगी । इस भीषण और असाधारण उपसर्ग से भी भगवान् अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए ।

कटपूतना कृत घोर उपसर्ग को धीरज और क्षमा पूर्वक सहते हुए भगवान् को लोकऽवधि ज्ञान उत्पन्न हुआ और उससे आप लोकवर्ती समस्तरुपी द्रव्यों को हस्तअलकवत् जानने और देखने लगे । अन्त में महावीर की धीरज और क्षमाशीलता के आगे कटपूतना ने अपनी हार मानी और क्रोध को शान्त कर भगवान् की पूजा की । (श्वे. साहित्य)

क्षमा वीर को शूलपाणि ने पुष्पांजलि से पूजा

अस्तिकग्राम के परिसर में शूलपाणि नामक व्यंतर देव का चैत्य था। भगवान वहाँ गये और वहाँ ठहरने के लिए पूजक से आज्ञा माँगी पर पूजक ने यह अधिकार ग्राम का बताया । उस समय ग्राम जन भी वहीं इकट्ठे हुए थे। भगवान ने उनसे चैत्य में ठहरने की आज्ञा माँगी तो लोगों ने कहा – "महाराज! आपका यहाँ ठहरना खतरनाक है। यह शूलपाणि देव कोई साधारण देव नहीं कि आप इसके मन्दिर में ठहरकर सकुशल रह सकें। दिन में ही मनुष्य यहाँ रह सकता हैं, भूलकर भी यदि वह रात को यहाँ रह जाय तो उसकी कुशल नहीं। क्रोध की प्रतिमूर्ति यह शूलपाणि रात में यहाँ ठहरने वाले को बड़ी निर्दयतापूर्वक मार डालता है । इस कारण रात्रिवास के लिए आप कोई दूसरा स्थान देखिये।

ग्रामजनों का अभिप्राय सुनकर महावीर ने कहा – इस बात की तुम कुछ भी चिन्ता न करो। हमें केवल आज्ञा दीजिये।

इस पर उनमें से एक ने कहा – आप यहाँ रह सकते हैं ।

महावीर ने कहा – मुझे सारे गाँव की आज्ञा चाहिये क्योंकि सारे गाँव का ही इस चैत्य पर स्वामित्व है ।

तब उपस्थित जनता ने आज्ञा प्रदान की और अपने चैत्य के एक कोने में जाकर ध्यान लगाया ।

सूर्यास्त के पहले–पहले सब लोग वहाँ से चले गये । पूजक ने महावीर से कहा – "देवार्य ! अब आप भी जाइये । यहाँ रहकर व्यर्थ प्राणों को संकट में न डालिये ।' परन्तु महावीर ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया । पूजक चला गया।

भगवान चैत्य के एक कोने में खड़े ध्यान मग्न थे। शूलपाणि ने महावीर की इस निर्भयता को धृष्टता समझा। मन ही मन कुढ़ता हुआ वह बोला – कैसा ढीठ मनुष्य है गाँव वालों ने समझाया, पूजक ने चेताया, फिर भी यहाँ से नहीं हटा, ठीक है। समय होने दो। अभी इसे दिखा दूंगा कि भलेमानसों की बात न मानने वाले की क्या दशा होती है ?

क्षणभर में सन्ध्या हुई और यक्ष ने अपना पराक्रम दिखाना शुरु किया। सर्वप्रथम उसने एक भयंकर अट्टहास किया जिसकी आवाज से सारा जंगल गूंज उठा। गाँव में सोते हुए मनुष्यों की छातियाँ धड़कने लगी। और हृदय दहल उठे पर भगवान महावीर निश्चल भाव हो ध्यान में मग्न रहे। अब शूलपाणि ने हाथी का रुप धारण कर भगवान के शरीर पर दन्त प्रहार किये और पैरों से उन्हें रौंदा पर भगवान को ध्यानच्युत नहीं कर सका । फिर यक्ष ने विकराल पिशाच बनकर नख–दन्तों से उनका शरीर नोंच–नौंच कर फाड़ा पर इस विक्रिया से भी वे ध्यान से विचलित नहीं हुए । फिर उसने विषधर नाग बनकर उनके शरीर के अनेक भागों में डंक मारा पर महावीर के मन की थाह नहीं पाया ।

अन्त में शूलपाणि ने अपनी दिव्य शक्ति से उनके शरीर में अनेक वेदनाऐं उत्पन्न की और विशेषकर सिर, कान, आँख, नाक, दाँत, नख और पीठ इन सात अगों में । पर क्षमामूर्ति श्रमण महावीर इन सब वेदनाओं को धैर्यपूर्वक सहन करते रहे।

रातभर शूलपाणि ने महावीर को विविध कसौटियों पर कसा पर उन्होंने लेशमात्र भी रंग न बदला । फलस्वरुप देव ने अपनी पराजय स्वीकार की और जिस क्रूर प्रकृति से उसने महावीर का सामना किया था वह प्रकृति उसके हृदय में से सदा के लिये विलीन हो गई । वह शान्त होकर क्षमाशील महावीर के चरणों में गिर पड़ा और अपराध की क्षमा प्रार्थना करता हुआ महावीर की धीरज और क्षमाशीलता के गीत गाने लगा । (श्वे. साहित्य)

मुक्तवीर का बंधन में भी क्षमाभाव

कुछ समय तक भगवान कुंड़ाक के वासुदेव के मन्दिर में रहे और वहाँ से विहार कर मद्दानासंनिवेश जाकर बलदेव के मन्दिर में ध्यान किया। मद्दना से आप बहुसाल होते हुए लोहार्गला राजधानी पधारे। लोहार्गला के राजा जितशत्रु पर उन दिनों शत्रुओं की वक्रदृष्टि होनेसे राजपुरुष बहुत सतर्क रहते थे। कोई व्यक्ति अपना परिचय दिये बिना नगरी में प्रवेश नहीं कर सकता था। महावीर और

गोशालक के वहाँ जाते ही पहरेदारों ने उन्हें रोक कर परिचय माँगा पर उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। फलस्वरुप उनको गिरफ्तार कर राजा के पास ले गये।

जिस समय महावीर और गोशालक को लाए गए उस समय वहाँ अस्थिग्रामवासी नैमित्तिक उत्पल भी उपस्थित था। भगवान को देखते ही वह खड़ा हो गया और वंदन करके बोला – ये गुप्तचर नहीं, राजा सिद्धार्थ के पुत्र धर्मचक्रवर्ती तीर्थंकर है। चक्रवर्ती के लक्षणों को भी मात करने वाले इनके शारीरिक लक्षणों को तो देखिये। उत्पल द्वारा परिचय पाते ही जितशत्रु ने भगवान और गोशालक को सत्कारपूर्वक मुक्त करके उनसे क्षमा प्रार्थना की ।

(श्वे. साहित्य)

सत्यदुर्गसमारुडं शीलप्राकारवेष्टितम् ।
क्षमाखैंयुत नित्यं दुर्जनः किं करिष्यति ।118।

जो सत्यरुपी किले पर चढ़ा हुआ है, जो शीलरुपी कोट से घिरा हुआ है तथा जो सदा क्षमारुपी खंग से सहित है दुर्जन उसका क्या कर सकता है ।

निमित्तमुदिश्य हि यः प्रकुप्यति
ध्रवं सतस्यापगमे प्रसीदति ।
अकारणद्वेषि मनस्तु यस्य वै कथं
जनं व परितोषयिष्यति ।119।

जो किसी कारण को लेकर कुपित होता है वह निश्चय ही उस कारण के दूर हो जाने पर प्रसन्न हो जाता है परन्तु जिसका मन बिना कारण ही द्वेष करता है उसे किस प्रकार सन्तुष्ट किया जा सकता है ?

क्षमाखड़ग करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ।
अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवोपशाम्यति ।120।

क्षमारुपी खड़ग जिसके हाथ में हो उसका दुर्जन क्या कर लेगा ? क्योंकि तृणरहित स्थान पर पड़ी हुई अग्नि स्वयं ही शान्त हो जाती है ।

कस्यचित्सम्बलं विद्या कस्यचित्सम्बलं धनम् ।
कस्यचित्सम्बलं मात्यं मुनीनां सम्बलं क्षमा ।121।

किसी का सम्बल (नाश्ता) विद्या है, किसी का सम्बल धन है, किसी का सम्बल मनुष्यता है, और मुनियों का सम्बल क्षमा है ।

यद्यपि रटति सरोषो मुगपतिपुरतोऽपि मत्तगोमायुः ।
तदपि न कुप्यति सिंहो ह्यासदृशि पुरुषे कुतः कोपः ।122।

यद्यपि क्रोध से युक्त मत्त शृगाल सिंह के सामने भी शब्द करता है तथापि सिंह कुपित नहीं होता सो ठीक है, क्योंकि अपनी समानता न रखने वाले पुरुष पर क्रोध कैसे किया जा सकता है ।

महामना मालवीयजी की क्षमा

मदनमोहन मालवीयजी भारत के एक सर्वश्रेष्ठ नवरत्न थे। वे देश के स्वतन्त्रता क्रांति में सबसे अग्रण्य थे वैसे शैक्षणिक क्रांति में भी अग्रण्य थे। वे देश के शैक्षणिक स्तर उन्नत करने के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना किये थे। एकदा महामनाजी एक छात्र पर अनुशासनहीनता के कारण क्रोधित हुए। इससे वह छात्र भयभीत हो गया। कुछ दिन के उपरान्त उस छात्र ने मालवीयजी को शान्तचित्त देखकर पूछा–क्या आपने मेरे को क्षमा कर दिया। मालवीयजी ने हंसकर कहा – अरे पगले ! मुझको क्रोध करना है तो ब्रिटिश सरकार के ऊपर करुंगा। आपके जैसे छोटे व्यक्ति के ऊपर मैं क्रोध नहीं करता हूँ। मैं तो केवल अनुशासन के लिए तुमको फटकारा था। इससे सिद्ध होता है कि महान व्यक्ति दूसरे के उपकार के लिए दूसरों को डाँट–फटकार करते है। किन्तु अन्तरंग में करुणा, क्षमाभाव रखते हैं। परन्तु नीच व्यक्ति, शक्तिहीन व्यक्ति शक्तिशाली व्यक्तियों से अपमान, क्षति दुर्व्यवहार आदि प्राप्त करके भी स्वार्थवश, लोभवश या दुर्बलतावश किसी प्रकार का प्रतिकार नहीं करते हैं बल्कि दीन–हीन भाव से सहन करते हैं। उपरोक्त प्रकार से सहन करना यथार्थ से क्षमा नहीं है बल्कि कायरता, दीनता, पाप है। वे ही नीच अपने से कम शक्तिशाली व्यक्तियों से कोई विशेष क्षति नहीं प्राप्त होने पर भी क्षोभित होकर शक्तिहीन, असहाय, दुर्बल व्यक्ति को कष्ट देते हें, अपमान करते हैं, क्षति पहुँचाते हैं।

परन्तु महान व्यक्ति दुर्बलहीन व्यक्ति से किसी प्रकार त्रुटि हो जाने पर उसके उपर करुणाभाव रखकर क्षमा कर देते हैं । परन्तु यदि कोई शक्तिशाली व्यक्ति अकारण स्वपर को क्षति पहचाता है तब महान् व्यक्ति कायररुप से, हीनतारुप से सहन नहीं करता है। उसी प्रकार क्षमा करना वे क्षमा का अपमान समझत है। वह इस प्रकार क्षमा को क्षमा का दुरुपयोग समझता है क्योंकि इसी प्रकार की क्षमा से दुर्जनों की दुर्जनता एवं दुष्टता में और भी वृद्धि हो जाती है। वे यथायोग्य अहिंसा सत्य उपाय से धैर्य, साहस सहित दुर्जनों का प्रतिकार करते हैं। जैस उपरोक्त उदाहरण में मालवीयजी ने एक निरीह बालक को सुधारने के लिए फटकारा था परन्तु उसके ऊपर अन्तरंग में क्षमाभाव धारण किये थे। परन्तु परशोषणकारी, परपीड़क, कूटनीतिज्ञ ब्रिटीश सरकार का अत्याचार जो भारतवासियों के ऊपर हो रहा था उसको वे अक्षम्य मानते थे। ब्रिटीश सरकार को भारत से हटाने के लिए वे सत्य अंहिसा का अस्त्र लेकर धर्मयुद्ध में कूद पड़े थे।

महात्मा गाँधी, सत्य एवं अहिंसा को साक्षत् भगवान मानते थे एवं सत्य और अहिंसा की पूजा करते थे । वे स्वयं सत्य, अहिंसा, समता, शान्ति एवं क्षमा की जीवन्तमूर्ति स्वरुप थे । वे ब्रिटीश सरकार को घृणा दृष्टि से नहीं देखते थे। वे अंग्रेज को शत्रु नहीं मानते थे क्योंकि महात्मा गाँधी बोलते थे " I Love fow

and friend" अर्थात् मैं शत्रु और मित्र को समान रुप से प्यार करता हूँ। केवल वे बोलते ही नहीं थे तदनुकूल आचरण भी करते थे। युद्ध में भी युद्ध क्षेत्र में जाकर अंग्रेजों कीसेवा किया करते थे इससे सिद्ध होता है कि महात्मा गाँधी अंग्रेजों से द्वेष नहीं करते थे वरन् प्यार करते थे। तो भी अंग्रेजों ने जो देश व्यापी अन्याय, अत्याचार, शोषण कर रहे थे उसको वे किंचित भी सहन नहीं करते थे। उस अन्याय, अत्याचार के विरूद्ध वे सत्य, अहिंसारुपी अस्त्र लेकर युद्ध करने के लिए कदाचित् भी पीछे नहीं हटते थे। यही क्षमा का आदर्श नियम था। नाथुरामगोडसे ने जब प्रार्थना के अवसर पर एक साथ तीन गोली से उनको भून दिया तब भी महात्मा गाँधी उनको क्षमा प्रदान किये थे और बोले थे मेरा देहावसान के बाद इसको कोई कष्ट नहीं देवे तथा इस प्रार्थना मन्दिर के सामने उसके लिए एक घर बनाकर नाथुरामगोडसे को देना चाहिये । यही महात्मा गाँधी की आदर्श क्षमा है ।

क्षमा ही आभूषण है

सुतबन्धुपदातीनामवराधशतान्यपि ।
महात्मानः दमन्ते हि तेषां तद्धि विभूषणाम् ।123।

महात्मा पुरुष पुत्र, बन्धु और सेवक आदि से सैकड़ों अपराध होने पर भी उन्हें क्षमा करते हैं, सो ठीक ही है क्योंकि क्षमा उनका आभूषण है ।

क्षमा करोड़ों ध्यान के समान है

पुण्यकोटीसमं स्तोत्रं स्तत्रकोटिसमो जपः ।
जयकोटीसमं ध्यानं ध्यानकोटीसमा क्षमा ।124।

भगवान का स्तोत्र करोड़ों पुण्य कार्यो के समान है जप करोड़ों स्तोत्रों के समान है ध्यान करोड़ों जपों के समान है और क्षमा करोड़ों ध्यानों के समान है।

शान्तात्मा का लक्षण

कालुष्यकारणे जाते दुर्निवारे गरीयसि ।
नान्तः क्षुभ्यति कस्मैचिच्छान्तात्माऽसौ निगद्यते ।125।

कलुषता का बहुत भारी दुर्निवार कारण उपस्थित होने पर भी जो अन्तरगं में किसी से क्षोभ नहीं करता वह शान्तात्मा कहलाता है ।

अध्याय 3

क्षमा से कर्म क्षय होते हैं

क्षमया क्षीयते कर्म दुखदं पूर्वसंचितम् ।
चित्तश्च जायते शुद्धं विद्वेषभयवर्जितम् ।126।

क्षमा से पूर्व संचित दुःखदायी कर्म क्षीण हो जाते हैं तथा हृदय द्वेष और भय से रहित होकर शुद्ध हो जाता है ।

तपस्वियों का रुप क्षमा है

पातिव्रत्यं स्त्रिया रुपं पिकीनां रुपकं स्वरः ।
विद्यारुपं कुरुपाणां क्षमारुपं तपस्विनाम् ।127।

स्त्रीरुप पतिव्रत्य है । कोकिलाओं का रुप स्वर है, कुरुप मनुष्यों का रुप विद्या है और तपस्वियों का रुप क्षमा है ।

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपलभ्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्येते जनः ।128।

क्षमावान मनुष्यों का एक ही दोष उपलब्ध है दूसरा नहीं, वह यह की क्षमा से युक्त मनुष्य को लोग असमर्थ समझते हैं ।

यहाँ पर लेखक क्षमावान् का दोष बताते हुए कहते हैं कि लोग क्षमावान् को असमर्थ समझते वस्तुतः यह क्षमावान् का दोष नहीं बल्कि गुण है। परन्तु अज्ञानी जीव उस क्षमा के रहस्य को नहीं जानते हैं। क्षमावान् को हीं असमर्थ समझते हैं। परन्तु **"क्षमा वीरस्य भूषणम् कायरस्य दूषणम्"** इस सिद्धान्त को नहीं जानते हैं।

क्षमाबलमशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ।
क्षमावशीकुतोलोकः क्षमया किं न साध्यते ।129।

क्षमा असमर्थ मनुष्यों का बल है, और असमर्थ मनुष्यों का आभूषण है। सारा संसार क्षमा से वश में हो जाता है सो ठीक है क्षमा से क्या नहीं सिद्ध होता है?

नरस्याभरणं रूपं, रुपस्याभरणं गुणाः ।
गुणस्याभरणं ज्ञानं, ज्ञानस्याभरणं क्षमा ।130।

मनुष्य का आभरण रुप है, रुप का आभरण गुण है, गुण का आभरण ज्ञान है, और ज्ञान का आभरण क्षमा है ।

क्षान्तिरेव मनुष्याणां मातेव हितकारिणी ।
माता कोपं समायाति शान्तिर्नैव कदाचन् ।31।

क्षमा ही मनुष्यों का माता के समान हित करने वाली है । विशेषता यह है कि माता तो कभी क्रोध को प्राप्त हो जाती है परन्तु क्षमा कभी क्रोध को प्राप्त नहीं होती है ।

यत्क्षमी कुरुते कार्य न क्रोधस्य वशं गतः ।
कार्यस्य साधिनि बुद्धिः सा च क्रोधेन नश्यति ।32।

क्षमावान् मनुष्य जो काम करता है उसे क्रोधी मनुष्य नहीं कर सकता है। क्योंकि कार्य को सिद्ध करने वाली बुद्धि है और बुद्धि क्रोध से नष्ट हो जाती है।

क्रोधयोधः कथंकारमहंकारं करोत्ययम् ।
लीलयैव पराजित्ये क्षमया शमयापि यः ।33।

यह क्रोधरुपी सुभट अंहकार क्यों करता है ? जबकि वह स्त्री रुप क्षमा के द्वारा अनायास ही पराजित हो चुका है ।

अबुद्धिमाश्रितानां च क्षन्तव्यमपराधिनाम् ।
न ही सर्वत्र पाण्डित्यं सुलभं पुरुषे क्वचित् ।34।

मूर्ख अपराधियों को क्षमा करना चाहिये , क्योंकि सभी पुरुषों में कहीं भी पाण्डित्य सुलभ नहीं है ।

अपकारिणि चेत्क्रोधः, क्रोधे क्रोधः कथं न ते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि ।35।

यदि अपराधी पर क्रोध करना है तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों के विरोधी क्रोध पर तुझे क्रोध क्यों नहीं आता है ।

क्षमावान् ही संत

एक युवक विरक्त होकर एक सन्त के पास पहुँचा। भगवद्भजन की प्रबल इच्छा थी।

सन्त ने कहा – "तुम स्नान करके शुद्ध हो आओ ।"

युवक स्नान करने गया, और सन्त ने आश्रम के पास झाड़ू देती हुई भँगिन को बुलाया। वे बोले – "यह युवक जब स्नान करके लौटे तब तुम इस तरह झाड़ू लगाना कि उस पर धूल उड़कर आये। लेकिन जरा सावधान रहना वह मारने दौड़ सकता है।

जब युवक लौटा तो भँगिन जान–बूझकर जोर से झाड़ू लगाने लगी। धूल उड़कर युवक पर आने लगी। उसने गुस्से में आकर पत्थर उठाया और भँगिन को मारने झपटा। भँगिन असावधान नहीं थी। झाड़ू फेंककर दूर भाग गयी। युवक जो मुँह में आया बकता रहा।

दुबारा स्नान करके वह महात्मा के पास आया। सन्त ने उससे कहा – "तुम तो पशु की तरह मारने दौड़ते हो। अभी तुम भजन के लायक नहीं। एक वर्ष बाद आना। एक वर्ष तक भगवत् भजन करते रहो।"

वर्ष पूरा करके युवक फिर सन्त के सामने हाजिर हुआ। साधू ने उससे फिर स्नान कर आने के लिए कहा। और उधर भँगिन को बुलाकर कहा, कि इस बार इसके लौटने पर इस तरह झाड़ू देना कि झाड़ू इससे छू जाये। डरना मत। मारेगा नहीं। कुछ कहे तो चुपचाप सुन लेना।'

भँगिन ने आज्ञा का पालन किया। युवक को गुस्सा तो बहुत आया, मगर सिर्फ कुछ कठोर वचन कहकर फिर स्नान करने चला गया।

जब वह सन्त के पास पहुँचा तो वे बोले – 'अभी भी तुम भूँकते हो। एक वर्ष बाद आना ।

एक वर्ष और बिताकर युवक सन्त के पास आया । पहले की तरह फिर स्नान करके आने की आज्ञा मिली। और भँगिन को आदेश दिया कि 'इस बार कूड़े की टोकरी उलट देना उस पर।'

भँगिन के कूड़ा डालने पर युवक न केवल शान्त रहा बल्कि भँगिन के सामने जमीन पर मस्तक टेककर हाथ जोड़कर बोला – 'देवी ! तुम मेरी गुरु हो। तुम्हारी ही कृपा से मैं अहंकार और क्रोध को जीत सका।'

दुबारा स्नान करके जब युवक सन्त के पास पहुँचा को उन्होंने उसे हृदय से लगा लिया, बोले – 'अब तुम भजन के अधिकारी हुए।'

मरणशील दुनिया में समता (क्षमा)

एक धनिक अमेरिकन स्त्री स्वामी रामतीर्थ के पास आकर बोली – 'महाराज! मेरा इकलौता बेटा मर गया है । मैं घोर दुखी हूँ । कृपया मुझे आनन्द प्राप्ति का मार्ग बतलाएँ ।

स्वामी रामतीर्थ ने कहा – 'आनन्द मिल जायेगा, मगर तुम्हें उसकी कीमत अदा करनी पड़ेगी ।'

स्त्री – 'पैसों की मेरे पास कमी नहीं । आप जो कीमत कहें मैं अदा करने के लिए तैयार हूँ ।' स्वामी – बाई! आनन्द के राज्य में सोन–चाँदी के सिक्के नहीं चलते ।

यह कहते हुए स्वामी जी ने उसे एक हठी अनाथ बालक देते हुए कहा – 'लो इसे पुत्र की तरह पालना । बाई – 'यह तो बड़ा मुश्किल काम है । मुझसे यह न हो सकेगा ।'

स्वामी जी – तो आनन्द पाना भी बड़ा मुश्किल है । मैं तुम्हें उसकी प्राप्ति नहीं करा सकता ।'

(संत विनोद)

वह क्रोध को पी गया

एक क्षत्रिय कुल पुत्र के भाई की हत्या करके हत्यारा लापता हो गया। भाई की मृत्यु पर कुलपुत्र का कलेजा टूक टूक हो गया । आँखें बरसने लगी। सिर पकड़कर वह शोकमग्न मुद्रा में शून्य आकाश की ओर पागल की तरह ताकने लगा, इधर–उधर देखने लगा।

तभी वीर क्षत्रियाणी का सुप्त क्षत्रियत्व जागा । बूढ़ी माँ ने शोकाकुल पुत्र को ललकारा 'सिर पीटना, रोना और शोक करना कायरों का काम है । क्षत्रिय वह होता है जो अपने शत्रु से बदला ले । बेटा ! तूने मेरा दूध पिया है, क्षत्रिय का रक्त तेरी नसों में दौड़ रहा है । उठ ! अपने हाथ में खड्ग संभाल, और भाई के हत्यारे के खून से उसकी प्यास बुझा।" कुलपुत्र की शोक में रोती आँखें क्रोध से लाल अंगारे की तरह दहक उठी । वीरता के दर्प से भुजाऐं फड़कने लगीं। उसने म्यान से तलवार बाहर खींच ली और उसे हवा में नचाने लगा।

क्षत्रियाणी माता ने उसके पौरुष को और अधिक उद्दीप्त किया। बेटा! सच्चा क्षत्रिय तो वह है जो शत्रु को आक्रमण करने का हौसला ही न होने दे। वह तो हमला होने से पहले ही उस पर शेर की तरह झपट पड़े और शत्रु के आक्रमण करने पर भी जो शत्रु का सामना न कर सके, वह क्षत्रिय नहीं, कायर होता है।

क्षत्रिय और उस पर कायर होने का लाँछन ! कुलपुत्र का खून उबल पड़ा। उसके अन्दर का सुप्त क्षत्रियत्व गरज उठा । माँ के चरण छुऐं, शपथ ली कि – "माँ अब तो बन्धु घातक को पकड़कर ही दम लूंगा। तुम्हारे सामने लाकर उसका सिर इसी तलवार से उड़ा दूं, जब समझना कि मैंने असली क्षत्रियाणो माँ का दूध पिया है।" माँ ने पुत्र की पीठ थपथपाई । कुलपुत्र हत्यारे की खोज में निकल पड़ा ।

गाँव, नगर, जंगल और पहाड़ों में कुलपुत्र हाथ में नंगी तलवार चमकाता हुआ घूमने लगा। उसके रौद्र रुप को देखकर खूंखार शेर भी सहम गये। बड़े–बड़े वीरों के कलेजे भी धक् से रह गये। एक तरह से धरती का चप्पा–चप्पा खोज डाला किन्तु हत्यारा नहीं मिला, सो नहीं मिला।

कुलपुत्र को घूमते–घूमते बारह वर्ष बीत गये। क्रोध का नशा फिर भी नहीं उतरा। उसे न खाने की सुध थी, ने पीने की। जब तक भाई के हत्यारे को पकड़ न ले उसे चैन कहाँ ? आखिर एक दिन शत्रु उसकी नजर में चढ़ ही गया। बाज जैसे चिड़िया पर झपटता है,बिल्ली जैसे चूहे को दबोच लेती है, वैसे ही कुलपुत्र पूरे बल से हत्यारे पर टूट पड़ा और पकड़ कर पाश में बाँध लिया। शत्रु को बन्दी बनाकर माँ के सामने ला पटका – "माँ, यह लो मेरी तलवार और अपने पुत्र का बदला लो।" कुलपुत्र ने तलवार माँ की और बढ़ा दी।

माँ ने गर्व से चमकती आँखों से पुत्र की ओर देखा तथा कहा – "बेटा! अपने भाई का बदला तू ही ले।" कुलपुत्र की तलवार चमचमा उठी ।

हत्यारा बलि के बकरे की तरह थर–थर काँप रहा था । कुलपुत्र के चरणों में बार–बार गिरकर मेमने की तरह मिमिया रहा था। आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। गिड़–गिड़ाकर प्राणों की भीख माँगने लगा। "मुझे जीवित छोड़ दो, जीवन भर तुम्हारा दास बना रहूँगा। मेरे बिना मेरी बूढ़ी माँ, युवा पत्नी और नन्हें–नन्हें बच्चे असहाय हो जायेगे। बिलख–बिलख कर मर जायेंगे। क्षमा कर दो कुलपुत्र! मुझ प्राणों की भीख दे दो।"

कुलपुत्र का क्रोधान्ध हृदय हत्यारे की दीन–हीन दशा को महज नाटक समझ रहा था। उसने गिड़–गिड़ाते शत्रु को एक ठोकर मारी – "दुष्ट ! अब माँ और बच्चों की फिक्र लगी है। " किन्तु सामने खड़ी माँ यह देख रही थी , उसका मातृत्व जाग उठा "उसकी बूढ़ी माँ ऐसे ही तड़पेगी जैसे कि मैं अपने पुत्र के लिये तड़पती हूँ। इसके बच्चे फिर अपने पितृघातक शत्रु से बदला लेने के लिये एक दूसरे के प्राणों के ग्राहक बने फिरते रहेंगे। बैर की परम्परा कितनी पीढ़ियों तक चलती जायेगी , कितनी माताओं की गोद सूनी होती रहेंगी। बैर का बदला बैर से नहीं लिया जा सकता। "हत्या का बदला हत्या" यह क्रम तो कभी समाप्त ही न हो सकेगा। बैर का सच्चा समाधान तो क्षमा ही हो सकता है ।

मातृत्व के प्रबुद्ध संस्कारों ने क्षत्रियाणी के हृदय को जीत लिया। उसने हाथ ऊँचा उठाया – "बेटा ! रुक जाओ। तलवार वापस म्यान में करो। घर पर आया हुआ शत्रु अवध्य होता है। फिर यह तो शरण माँग रहा है, प्राणों की भीख माँग रहा है। शरणागत को मारना, क्षत्रिय का धर्म नहीं है । अतः इसे छोड़ दो।

माँ की बात सुनकर कुलपुत्र सहसा भोंचका रह गया। "माँ क्या कर रही हो ? जिस हत्यारे को पकड़ने के लिए बारह–बारह वर्ष तक जंगलों की खाक छानता रहा, तब कहीं बड़ी कठिनता से वह हाथ में आया और इस प्रकार आज उसके बदला लेने का अवसर आया, तब तुम कहती हो छोड़ दो, नहीं माँ! नहीं! यह नहीं हो सकता हर्गिज नहीं हो सकता। मेरे मन की आग तब तक शान्त नहीं होगी जब तक की मैं इसका खून नहीं पी जाऊँ, मुझे रोको मत।"

बेटा क्रोध कभी क्रोध से शान्त हुआ है ? खून से खून के दाग छूटे है कभी ? क्रोध को सफल करना वीरता नहीं है। वीरता है –शत्रु को क्षमा करना, क्रोध को पी जाना।

कुलपुत्र की तलवार नीचे झुक गई। वह विचार मग्न हो गया – "माँ ठीक तो कह रही है क्रोध तो राक्षस है, यह सफल हुआ तो विनाशलीला के अतिरिक्त और क्या करेगा ? बाहर के निरीह, शत्रु को मारने से क्या ? इसके अन्दर के

राक्षस को ही मारना चाहिये।" कुलपुत्र का सद्विवेक जगा तो क्रोध शान्त हो गया। जो तलवार हत्यारें का खून पीने के लिए लपलपा रही थी उसी तलवार से बंधन काटकर उसे मुक्त कर दिया। हत्यारा कुलपुत्र के चरणों से लिपट गया। कुलपुत्र ने उसे भाई की तरह स्नेह से उठा लिया। और प्रेमपूर्वक एक ही थाली में अपने साथ खिला पिलाकर विदा किया।

(जैन इतिहास की प्रेरक कथाएँ)

अनादिकाल से जीव अनन्त पुण्य पापरुपी कर्म बीज को स्वयं के आत्मा रुपी खेत में रोपण किया है। कर्मरुपी बीज की स्थिति पूर्ण होने के उपरान्त वे कर्म निश्चित रुप में योग्य परिस्थिति को प्राप्त कर अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित होकर फल प्रदान करेंगे। पुण्यरुपी बीज सुखरुपी फल देता है । उस सुख–दुःख रुपी फल के लिये स्वयं आत्मा ही उत्तरदायी है। उस फल को स्वयं पूवोर्जित जानकर, मानकर एवं अनुभव कर यदि समता भाव से सहन किया जावे तो वे पूर्वार्जित कर्म नष्ट होकर पुनः फल देने के लिये असमर्थ हो जायेंगे। यदि उस समय में समता भाव से च्युत होकर शुभ फल में आसक्ति एवं अशुभ फल में द्वेष पोषण करने से वे पुनः आगे के लिए अनेक बीज को रोपण करके अनन्त संतति छोड़ जायेंगे। इसीलिए सुख एवं दुःख में साम्यभाव धारण करके आत्म कल्याण करना चाहिये। आचार्य गुणभद्र स्वामी ने आत्मानुशासन में कहा है –

सुखं दुःखं वा स्यादिह विहितकर्मोदयवशात् ,
कुतः प्रीतिस्तापः कुत इति विकल्पाद्यदि भवेत् ।
उदासीनस्तस्य प्रगलति पुराणं न हि नवं,
समास्कन्दत्येष स्फुरति सुविदग्धो मणिरिव ।263।

In this world pleasure and pain arise out of the fruition of past karmas. If one becomes un-attached to considerations as to whom he should have love and whom he should hate, then his past Karmas fall off, and a new on does not bind him. He a leatned (ascetic) shines forth like a jewel.

संसार में पूर्वकृत कर्म के उदय से जो भी सुख अथवा दुःख होता है उससे प्रीति क्यों और खेद भी क्यों, इस प्रकार के विचार से यदि जीव उदासीन होता है–राग और द्वेष से रहित होता है – तो उसका पुराना कर्म जो निर्जीर्ण होता है और नवीन कर्म निश्चय से बन्ध को प्राप्त नहीं होता है। ऐसी अवस्था में यह संवर और निर्जरा से सहित जीव अतिशय निर्मल मणि के समान प्रकाशमान होता है। स्व और पर को प्रकाशित करने वाले केवल ज्ञान से सुशोभित होता है।

पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से उपसर्ग, परीषह होते हैं, उस समय में स्वस्वभाव से, क्षमाभाव से, समता से च्युत न होकर यदि उपसर्ग परीषह सहन

किया जाता है, तब पूर्वार्जित कर्म शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है–

परिषहाद्यविज्ञानादास्त्रवस्य निरोधिनी ।
जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा ।24।

आत्मा का चिन्तवन करने से परिषहों तथा उपसर्ग आदि का ज्ञान अनुभव नहीं होता, उससे कर्मो के आस्रव को रोकने वाली पहले बन्धे हुए कर्मो की निर्जरा शीघ्र होने लगती है ।

आत्मदेहान्तरज्ञानजनिताह्लादनिर्वृतः ।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुजानोऽपि न खिद्यते ।34।

आत्मा और शरीर के भेद–विज्ञान से उत्पन्न परम् आह्लाद प्रसन्नता से भरपूर साधु तपश्चरण के द्वारा कठिन भयानक शारीरिक कष्टों को भोगता हुआ भी खेदखिन्न–दुःखी नहीं होता है ।

क्षमावान गजकुमार

नेमिनाथ भगवान के जन्म से पवित्र हुई प्रसिद्ध द्वारिका के अर्धचक्री वासुदेव की रानी गन्धर्वसेना से गजकुमार का जन्म हुआ था । राजकुमार बड़ा वीर था। उसके प्रताप को सुनकर ही शत्रुओं की विस्तृत मानरुपी बेल भस्म हो जाती थी। पोदनपुर के राजा अपराजित ने तब बड़ा सिर उठा रखा था। वासुदेव ने उसे अपने काबू में लाने के लिए अनेक यत्न किए, पर वह किसी तरह इनके हाथ न पड़ा तब इन्होंने शहर में यह डोंडी पिटवाई कि जो मेरे शत्रु अपराजित को पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करेगा, उसे मन चाहा वर मिलेगा। राजकुमार डोंडी सुनकर पिता के पास गया अैर हाथ जोड़कर उसने स्वयं अपराजित पर चढ़ाई करने की प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना मंजूर हुई। वह सेना लेकर अपराजित पर जा चढ़ा। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। अन्त में विजयलक्ष्मी ने राजकुमार का साथ दिया । अपराजित को पकड़ लाकर उसने पिता के सामने उपस्थित कर दिया । राजकुमार की इस वीरता को देखकर वासुदेव बहुत खुश हुए। उन्होंने इसकी इच्छानुसार वर देकर उसे सन्तुष्ट किया ।

ऐसे बहुत कम अच्छे पुरुष निकलते हैं जो मनचाहा लाभ प्राप्त कर सदाचारी और सन्तोषी बने रहे। राजकुमार की भी यही दशा हुई। उसने मनचाहा पिताजी से वर प्राप्त कर अन्याय की ओर कदम बढ़ाया। वह पापी जबरदस्ती अच्छे–अच्छे घरों की सती स्त्रियों की इज्जत लेने लगा। वह ठहरा राजकुमार, उसे कौन रोक सकता था? और जो रोकने की कुछ हिम्मत करता तो वह उसकी आँखों का कांटा होकर खटकने लगता और फिर राजकुमार उसे जड़मूल से उखाड़कर फेंकने का यत्न करता। उस काम को, दुराचार को, धिक्कार है, जिसके वश हो मूर्ख जनों को

लज्जा और भय भी नहीं रहता है।

इसी तरह राजकुमार ने अनेक अच्छी–अच्छी कुलीन स्त्रियों की इज्जत ले डाली। पर उसके दबदबे से किसी ने चूं तक नहीं किया । एक दिन मांसुल सेठ की सुरति नाम की स्त्री पर इसकी नजर पड़ी और इसने उसे खराब भी कर दिया। यह देख मांसुल का हृदय क्रोधाग्नि से जलने लगा। पर वह बेचारा इसका कुछ नहीं कर सकता था। इसलिये उसे भी चुपचाप घर में बैठ रह जाना पड़ा।

एक दिन भगवान नेमिनाथ भक्तजनों के पुण्योदय से द्वारिका आये। बलभद्र, वासुदेव तथा और भी बहुत से राज–महाराज बड़े आनन्द के साथ भगवान की पूजा करने को गये । खूब भक्ति भावों से उन्होंने स्वर्गमोक्ष का सुख देने वाले भगवान की पूजा स्तुति की, उनका स्मरण किया । बाद में गृहस्थ और मुनि धर्म का भगवान के द्वारा उन्होंने उपदेश सुना, जो कि अनेक सुखों को देने वाला है उपदेश सुनकर सभी बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने बार–बार भगवान की स्तुति की। सच है साक्षात् सर्वज्ञ भगवान का दिया धर्मोपदेश सुनकर किसे आनन्द या खुशी न होगी। भगवान के उपदेश का गजकुमार के हृदय पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा। वह अपने किये पापकर्मो पर बहुत पछताया। संसार से उसे बड़ी घृणा हुई। वह उसी समय भगवान के पास ही दीक्षा ले लिया, जो संसार के भटकन को मिटाने वाली है। दीक्षा लेकर गजकुमार मुनि विहार कर गये। अनेक देशों और नगरों में विहार करते, और भव्यजनों को धर्मोपदेश द्वारा शान्ति लाभ कराते अन्त में वे गिरनार पर्वत के जंगल में आये उन्हें अपनी आयु बहुत थोड़ी जान पड़ी, इसलिए वे प्रायोपगमन सन्यास लेकर आत्मचिन्त्वन करने लगे। तब इनकी ध्यान मुद्रा बड़ी निश्चल और देखने योग्य थी।

इनके सन्यास का हाल मांसुल सेठ को जान पड़ा, जिसकी स्त्री को गजकुमार ने अपने दुराचारीपने की दशा में खराब किया था । सेठ को अपना बदला चुकाने का बड़ा अच्छा मौका हाथ लगा। वह क्रोध से भर्राता हुआ गजकुमार मुनि के पास पहुँचा और उनके सब सन्धि स्थानों में लोहे के बड़े–बड़े कीली ठोकदार चलता बना। गजकुमार मुनि पर उपद्रव तो बड़ा दुःसह हुआ, पर वे जन्मतः अच्छे अभ्यासी थे अनुभवी थे। इसलिये उन्होंने इस घोर कष्ट को एक तिनके के चुभने की बराबर भी न गिनकर बड़ी शान्ति और धीरता के साथ शरीर छोड़ा यहाँ से वे स्वर्ग में गये। वहाँ अब चिरकाल तक सुख भोगेंगे। महापुरुषों का चिरत्र बड़ा ही अचम्भा पैदा करने वाला होता है । देखिये–कहाँ तो गजकुमार मुनि को ऐसा दुःसह कष्ट और कहाँ सुख देने वाली पुण्य समाधि ! इसका कारण सच्चा तत्व ज्ञान है। इसलिए इस महत्ता को प्राप्त करने के लिए तत्व ज्ञान का अभ्यास करना सबके लिए आवश्यक है ।

उपसर्ग विजयी पाण्डव

एक दिन वीर पांचों पाण्डव शत्रुंजय पर्वत पर प्रतिमायोग होकर स्वात्मानन्दरुपी अमृत का पान कर रहे थे ।

उस समय वहाँ पर दुर्योधन के वंश का क्षयवरोधन नाम का कोई पुरुष रहता था । ज्योंही उसने वहा पाण्डवों का आगमन सुना त्योंही उनकी क्रोधरुपी अग्नि जाज्ज्वल्यमान हो गई। क्रोध में आकर उसने महादुःख देने वाला पांचों पाण्डव मुनियों पर घोर उपसर्ग करना शुरू किया । हे पाण्डवों ! यह तुम्हारे लिये आभूषण है, ऐसा दुर्वचन कहकर तपाये हुए लौह के मुकुट, कड़े और कटिसूत्र आदि बनाये और अग्नि में अत्यन्त प्रज्ज्वलित कर उनके मस्तकादि अंगों में पहिनाये और पाद में तप्त लोहे के आभूषणों को पहनाकर ऊपर कील से ठीक दिया। अत्यन्त धीर वीर कर्म के उदय को जानने वाले कर्मक्षय करने में समर्थ पाण्डवों ने इस दाह के उस भयंकर उपसर्ग को हिम के समान शीतल समझा ।

अन्त में युधिष्ठर, अर्जुन, भीम इन तीन मुनियों ने तो शुक्लध्यान रुपी अग्नि के द्वारा कर्मबन्धन को भस्म कर शाश्वत सुख प्राप्त किया। तथा नकुल और सहदेव बड़े भाईयों की यह अवस्था देखकर कुछ आकुलितचित्त हो गये। जिससे कषाय कणिका कों पूर्णतया नाश करने के लिए समर्थ नहीं हुए। इसलिए उपशम श्रेणी में आरुढ़ होकर स्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए।

क्षमा से कर्मक्षय

श्रावस्ती नगरी में कनककेतु नामक राजा था। उसकी महारानी का नाम मलयासुन्दरी, कुमार का नाम खन्धक व पुत्री का नाम सुनन्दा था। खन्धक की प्रतिभा बड़ी विलक्षण थी। वह प्रत्येक कार्य को बड़ी कुशलता के साथ करता था। सुनन्दा भी अपने भाई और बहन की तरह ही विदुषी, सुरुपा व गुणती थी। भाई और बहन के बीच गहरा प्रेम था। सुनन्दा का विवाह कुन्ती नगर के राजा पुरुषसिंह के साथ हुआ ।

एक बार श्रावस्ती नगरी में विजयसेन का शुभागमन हुआ। हजारों आदमियों ने उनके दर्शन किये व प्रवचन सुना। राजकुमार खन्धक भी गया। मुनि के उपदेश ने उसके विचार ही बदल दिये। राजकुमार से उसे एक निर्ग्रन्थ बनने की प्रेरणा जागृत हुई। मुनि से उसने प्रार्थना की। उन्होंने उसे और उपदेश दिया, जिससे उसकी वैराग्य भावना और सुदृढ़ हो गई। राजकुमार ने माता–पिता से अनुमति ग्रहण कर भगवती दीक्षा ग्रहण कर ली । स्थविर मुनियों के सहवास में वे रहते तथा तपश्चरण, स्वाध्याय व ज्ञानाभ्यास करते । एक समय बीतने तक उन्होंने अपने शास्त्रीय ज्ञान में एक सीमा तक प्रवीणता प्राप्त कर ली।

साधना की भी विभिन्न श्रेणियाँ होती है । कुछ एक में एक साधक दूसरे साधु के आश्रम में रहकर साधना करता है और उसके बाद वह स्वतंन्त्र होकर भी साधना कर सकता है । खन्धक मुनि ने अपने ज्ञानाभ्यास व साधना की एक श्रेणी पार कर चुकने पर गुरु से अकेले विहरण की अनुमति प्राप्त कर ली । तपस्या में रत रहते हुए वे अकेले ही ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे । खन्धक मुनि के पिता राजा कनककेतु को जब यह पता चला तो उसने अपने पाँच सौ सुभट उनके अंगरक्षक के रुप में नियुक्त कर दिये। यद्यपि साधक किसी का भी अवलम्बन व सहयोग नहीं चाहता और न वह किसी परिस्थिति में भय खाता है। खन्धक मुनि को इनकी आवश्यकता नहीं थी, पर राजा ने अपने मोह–राग के वश ऐसा कर दिया। खन्धक मुनि ने उसे भी मन से नहीं चाहा । वे पाँच सौ सुभट जिधर मुनि विहार करते उनकी छाया की तरह उनके साथ–साथ जाते ।

सौ–सौ प्रयत्न के बावजूद भी होनहार कभी नहीं टल सकती । खन्धक मुनि के साथ भी ऐसा ही हुआ । वे विहरण करते हुए अपनी बहन की राजधानी कुन्तीनगर में पधारे । उस दिन उनके एक मास के तप का पारणा था । मुनि गोचरी के लिए शहर में आये । सहवर्ती पाँच सौ सुभटों ने सोचा कि यह तो बहिन की राजधानी है । यहाँ इतनी सतर्कता की क्या आवश्यकता है ? वे शहर में इधर–उधर घूमने के लिए निकल पड़े ।

राजा और रानी ऊपर गवाक्ष में बैठे चौपड़ खेल रहे थे। अचानक रानी की नजर मुनि पर पड़ी । उसे अपने भाई की स्मृति हो आई, अतः खेलने में दिल उचट गया। राजा को उससे रानी पर मुनि के साथ अनुचित सम्बन्ध का सन्देह हुआ। उसने झल्लाते हुए खेल को उसी समय समाप्त कर दिया। सभा में आया और जल्लादों को बुलाकर उसने आदेश दिया कि जो मुनि अभी–अभी महलों के नीचे से गुजरा है, उसकी अतिशीघ्र ही चमड़ी उतार दी जाये। जल्लादों ने आदेश शिरोधार्य किया और मुनि को पकड़कर श्मशान ले गये। चमड़ी को छीलना आरम्भ कर दिया। वह भयंकर वेदना थी। किन्तु मुनि का मन अडोल रहा। उसमें न किसी के प्रति शत्रुता थी और न प्रतिशोध की भावना। समत्व में झूलते हुए ध्यानावस्थित रहे। उनके मुँह से उफ की ध्वनि तक भी नहीं निकली। अविचलित मन से स्थिर रहे। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था कि जैसे उनके शरीर से उनका कोई सम्बन्ध भी नहीं है। उसी तितिक्षा भाव में उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त किया और निर्वाण पद पर आरुढ़ हुए।

मुनि के छीलने की बात विद्युत्वेग की तरह शहर में फैल गई । पाँच सौ सुभटों ने भी वह सारी घटना सुनी तो उनका दिल रो पड़ा । वे राजा के पास पहुँचे और उन्हें सारी वस्तुस्थिति बताई। अपने साले की अपने ही द्वारा इस तरह निर्मम हत्या से राजा को भी बहुत दुःख हुआ। रानी के पास यह सूचना पहुँची

तो हृदय को बहुत आघात लगा । ऐसी हृदय–विदारक बात वह अपने जीवन में कभी सुनेगी भी, ऐसी कल्पना भी कैसे की जा सकती थी। नगरवासियों ने भी उसे बड़ी घृणा व ग्लानिपूर्वक सुना।

धर्मघोष मुनि उसी दिन वहाँ पधारे। राजा, रानी व सहस्त्रों व्यक्ति वहाँ पहूँचे। राजा और रानी के मन में दुःख भरा हुआ था। राजा के मुँह से सहज ही में यह प्रश्न निकल पड़ा – भगवन् ! मेरे से यह पाप क्यों हुआ ? इसकी भूमिका क्या है ?

मुनिवर ने उत्तर दिया – राजन् ! खन्धक से अपने पूर्वभव में एक महापाप हुआ था । खन्धक उस समय भी राजकुमार था । उसने बहुत प्रसन्नता के साथ एक काचर का छिलका उतारा । तू उस समय उसी काचर में एक बीज था । पूरा का पूरा छिल्का बिना कहीं तोड़े उसने उतार लिया था । कुमार अपनी इस चातुरी पर फूला नहीं समाया । उस समय उसके कर्मो का गाढ़–बन्धन हुआ । उसके परिणाम स्वरुप उसकी चमड़ी उतारी गई और तेरे द्वारा इसलिये उतारी गई कि तू भी उसी काचर में एक बीज था।

हिन्दू धर्म में वर्णित क्षमा

, द्रौपदी द्वारा तेज की प्रशंसा

दुर्योधन के दल, बल, कौशल, कूटनीति के कारण धर्मराज युधिष्ठर राज वैभव, सुख सामग्री तथा मातृभूमि त्यागकर वनवास करने के लिये अपने सहोदर एवं द्रौपदी के साथ वन में चले गये। वनवास के अवसर पर द्रौपदी दुर्योधन की दुष्टता, कूटनीति, क्रूरनीति से क्षुभित होकर बहुत ही मन में अशान्त हो उठी। दुर्योधन पक्ष से बार–बार घात–प्रतिघात, कष्ट एवं यातना प्राप्त होने पर भी युधिष्ठर जब केवल समता से सहन करने लगे एवं उसके प्रतिकार स्वरुप प्रतिक्रिया नहीं किये, तब द्रौपदी के क्षत्रिय रक्त तेज उबल पड़ा। उनके स्वाभिमान एवं तेज जाग उठा। अन्तरंग में उछलती हुई तेज भावधारा को वे अधिक समय तक रोक नहीं पाई। इसलिये वह उछलती हुई तेज भावधारा एक दिन युधिष्ठर के सामने उछल पड़ी। तब वह बोली – हे क्षत्रिय श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठर, दुर्योधन के कारण बाल्यावस्था से लकर अभी तक दुर्योधन ने आप लोगों को और मेरे को बहुत अनैतिक, अवैधानिक, अधार्मिक कष्ट यातनाऐं दी। तो भी आप क्षत्रिय राजकुमार होकर भी उसका कोई क्षत्रियोचित्त प्रतिकार नहीं किये। और वे बोली –

नकुलं सहदेवं च दृष्ट्वा ते दुखितावुभौ ।
अदुःखार्हौ मनुष्येन्द्र कस्मान्मन्युर्न वर्धते ।33।

महाभारत ।। वनपर्व 27 अध्याय पृष्ठ 1023

नरेन्द्र ! नकुल और सहदेव दुःख भोगने के योग्य नहीं हैं । इन दोनों को आज दुःखी देखकर आपका क्रोध क्यों नहीं बढ़ रहा है ।

द्रुपदस्य कुले जातां स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः ।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनीं वीरपत्नीमनुव्रताम् ।34।
मां वै वनगतां दृष्ट्वा कस्मात् क्षमसि पार्थिव ।35।

मैं द्रुपद के कुल में उत्पन्न हुई महात्मा पाण्डु की पुत्रवधु, वीर धृष्टद्युम्न की बहिन तथा वीरशिरोमणि पाण्डवों की पतिव्रता पत्नी हूँ। महाराज ! मुझे इस प्रकार वन में कष्ट उठाती देखकर भी आप शत्रुओं के प्रति क्षमाभाव कैसे धारण करते हैं ?

नूनं च तव वै नास्ति मन्युर्भरतसत्तम ।
यत् ते भ्रातृंश्च मां चैव दृष्ट्वा न व्यथते मनः ।36।

भरतश्रेष्ठ ! निश्चय ही आपके हृदय में क्रोध नहीं है, क्योंकि मुझे और अपने भाइयों को भी कष्ट में पड़ा देख आपके मन में व्यथा नहीं होती है ।

न निर्मन्युः क्षत्रियोऽस्तिलोके निर्वचनं स्मृतम् ।
तदद्य त्वयि पश्यामि क्षत्रिये विपरीतवत् ।37।

संसार में कोई भी क्षत्रिय क्रोधरहित नहीं होता, क्षत्रिय शब्द की व्युत्पत्ति ही ऐसी है, जिससे उसका सक्रोध होना सूचित होता है, परन्तु आज आप जैसे क्षत्रिय में मुझे वह क्रोध का अभाव क्षत्रियत्व के विपरीत सा दिखयी देता है ।

यो न दर्शयते तेजः क्षत्रियः काल आगते ।
सर्वभूतानि तं पार्थ सदा परिभवन्त्युत ।।38।।
तत् त्वया न क्षमा कार्या शत्रुन् प्रतिकथंचन।
तैजसैव हि ते शक्या निहन्तुं नात्र संशयः ।।39।।

कुंतीनन्दन! जो क्षत्रिय समय आने पर अपने प्रभाव को नहीं दिखाता, उसका सब प्राणी तिरस्कार करते हैं। महाराज ! आपको शत्रुओं के प्रति किसी प्रकार भी क्षमाभाव नहीं धारण करना चाहिये तेज से ही उन सबका वध किया जा सकता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।

तथैव यः क्षमाकाले क्षत्रियो नोपशाम्यति ।
अप्रियः सर्वभूतानां सोऽमुत्रेह च नश्यति ।40।

इसी प्रकार जो क्षत्रिय क्षमा करने के योग्य समय आने पर शान्त नहीं होता, वह सब प्राणियों के लिए अप्रिय हो जाता है और इह लोक तथा परलोक में भी उसका विनाश ही होता है ।

तेज और क्षमा के अवसर (प्रह्लाद बलि संवाद)

द्रौपदी युधिष्ठर को तेज और क्षमा के योग्य अवसर के बारे में बोलते हुए प्राचीन एक संवाद को उद्धातन करती है। वह बोलती है–हे धर्मराज! युधिष्ठर पूर्वकाल में विरोचन पुत्र बलि ने बुद्धिमान धर्मात्मा दैत्यराज प्रह्लाद को विनय से पूछा – हे तात् क्षमा और तेज में श्रेष्ठ कौन है? जो श्रेष्ठ हो वह मेरे लिये बताइये मैं वही पालन करुँगा। तब धर्मज्ञ प्रह्लाद ने निम्न प्रकार उपदेश देने लगे।

न श्रेयः सततं तेजो न नित्यं श्रेयसी क्षमा ।
इति तात विजानीहि द्वयमेतदसंशयम् ।6।

महाभारत ।। अध्याय 28 पृष्ठ 1022

प्रह्लाद बोले – तात! न तो तेज ही सदा श्रेष्ठ है और न क्षमा ही। इन दोनों के विषय में मेरा ऐसा ही निश्चय जानो, इसमें संशय नहीं है ।

यो नित्यं क्षमते तात बहून् दोषान् स विन्दति ।
भृत्याः परिभवन्त्येनमुदासीनास्तथारयः ।7।
सर्वभूतानि चाप्यस्य न नमन्ति कदाचन ।
तस्मान्नित्यं क्षमा तात पण्डितैरपि वर्जिता ।8।

वत्स ! जो सदा क्षमा ही करता है, उसे अनेक दोष प्राप्त होते हैं । उसके भृत्य, शत्रु तथा उदासीन व्यक्ति सभी उसका तिरस्कार करते हैं । कोई प्राणी कभी उसके सामने विनयपूर्वक बर्ताव नहीं करते, अतः तात ! सदा क्षमा करना विद्वानों के लिये भी वर्जित है ।

अवज्ञाय हि तं भृत्या भजन्ते बहुदोषताम् ।
आदातुं चास्य वित्तानि प्रार्थयन्तेल्पचेतसः ।9।

सेवकगण उसकी अवहेलना करके बहुत से अपराध करते रहते हैं। इतना ही नहीं, वे मूर्ख भृत्यगण उसके धन को भी हड़प लेने का हौसला रखते हैं।

यानं वस्त्राण्यलंकाराञ्छयनासनानि च ।
भोजनान्यथ पानानि सर्वोपकरणानि च ।10।
आददीरन्नधिकृता यथा काममचेतसः ।
प्रदिष्टानि च देयानि न दद्युर्भर्तृशासनात् ।11।

विभिन्न कार्यो में नियुक्त किए हुए मूर्ख सेवक अपनी इच्छानुसार क्षमाशील स्वामी के रथ, वस्त्र, अलंकार, शय्या, आसन, भोजन, पान तथा समस्त सामग्रियों का उपयोग करते रहते हैं तथा स्वामी की आज्ञा होने पर किसी को देनें योग्य वस्तुऐं भी नहीं देते हैं ।

न चैनं भर्तृपूजाभिः पूजयन्ति कथंचन ।
अवज्ञानं हि लोकेऽस्मिन् मरणादपि गर्हितम् ।12।

स्वामी का जितना आदर होना चाहिये, उतना आदर वे किसी प्रकार भी नहीं करते। इस संसार में सेवकों द्वारा किया हुआ अपमान तो मृत्यु से भी निन्दित है ।

क्षमिणं तादृशं तात ब्रुवन्ति कटुकान्यपि ।
प्रेष्याः पुत्राश्च भृत्याश्च तथोदासीनवृत्तयः ।13।

तात! उपर्युक्त क्षमाशील को अपने सेवक, पुत्र भृत्य तथा उदासीन वृत्ति के लोग कटुवचन भी सुनाया करते हैं ।

अथास्य दारानिच्छन्ति परिभूय क्षमावतः ।
दाराश्चास्य प्रवर्तन्ते यथाकाममचेतसः ।14।

इतना ही नहीं, वे क्षमाशील स्वामी की अवहेलना करके उसकी स्त्रियों को भी हस्तगत करना चाहते हैं और वैसे पुरुष की मूर्ख स्त्रियाँ भी स्वेच्छाचार में प्रवृत्त हो जाती है ।

तथा च नित्यमुदिता यदि नाल्पमपीश्वरात् ।
दण्डमर्हन्ति दुष्यन्ति दुष्टाश्चाप्यपकुर्वते ।15।

यदि उन्हें अपने स्वामी से तनिक भी दण्ड नहीं मिलता तो वे सदा मौज उड़ाती हैं और आचार से दूषित हो जाती है । दुष्टा होने पर वे अपने स्वामी का अपकार भी कर बैठती है।

एते चान्ये च बहवो नित्यं दोषाः क्षमावताम् ।
अथ वैरोचने दोषानिमान् विद्धयक्षमावताम् ।16।

सदा क्षमा करने वाले पुरुषों को ये तथा और भी बहुत से दोष प्राप्त होते हैं। विरोचन कुमार! अब क्षमा न करने वालों के दोषों को सुनें।

अस्थाने यदि वा स्थाने सततं रजसाऽऽवृतः ।
क्रुद्धोदण्डान् प्रणयति विविधान् स्वेन् तेजसा ।17।।

क्रोधी मनुष्य रजोगुण से आवृत्त होकर योग्य या अयोग्य अवसर का विचार किये बिना ही अपने उत्तेजित स्वभाव से लोगों को नाना प्रकार के दण्ड देता रहता है।

मित्रैः सह विरोधं च प्राप्नुते सेजसाऽऽवृतः ।
आप्नोति द्वेष्यतां चैव लोकात् स्वजनतस्तथा ।18।।

तेज (उत्तेजना) से व्याप्त मनुष्य मित्रों से विरोध पैदा कर लेता है तथा साधारण लोगों और स्वजनों का द्वेषपात्र बन जाता है।

सोऽवमानादर्थहानिमुपालम्भमनादरम् ।
संतापद्वेषमोहांश्च शत्रूँश्च लभते नरः ।19।

वह मनुष्य दूसरों का अपमान करने के कारण सदा धन की हानि उठाता है। उपालम्भ सुनता और अनादर पाता है। इतना ही नहीं, वह संताप, द्वेष, मोह तथा नए–नए शत्रु उत्पन्न कर लेता है।

क्रोधाद्दण्डान्मनुष्येषु विविधान् पुरुषोऽनयात् ।
भ्रश्यते शीघ्रमैश्वर्यात् प्राणेभ्यः स्वजनादपि ।20।

मनुष्य क्रोधवश अन्यायपूर्वक दूसरे लोगों पर नाना प्रकार के दण्ड का प्रयोग करके अपने ऐश्वर्य, प्राण और स्वजनों से भी हाथ धो बैठता है ।

योपकर्तृंश्च हर्तृंश्च तेजसैवोपगच्छति ।
तस्समादुद्विजते लोकः सर्पाद् वेश्मगतादिव ।21।

जो उपकारी मनुष्यों और चोरों के साथ भी उत्तेजनायुक्त बर्ताव ही करता है, उससे सब लोग उसी प्रकार उद्विग्न होते हैं, जैसे घर में रहने वाले सर्प से।

यस्मादुद्विजते लोकः कथं तस्य भवो भवेत् ।
अन्तरं तस्य दृष्टैव लोको विकुरुते ध्रुवम् ।22।

जिससे सब लोग उद्विग्न होते हैं, उससे एश्वर्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है? उसका थोड़ा–सा भी छिद्र देखकर लोग निश्चय ही उसकी बुराई करने लगते हैं।

तस्मान्नत्युत्सृजेत् तेजो न च नित्यं मृदुर्भवेत् ।
काले काले तु सम्प्राप्ते मृदुस्तीक्ष्णोऽपि वा भवेत् ।23।

इसलिए न तो सदा उत्तेजना का ही प्रयोग करें और न सर्वदा कोमल ही बना रहे। समय–समय पर आवश्यकता के अनुसार कभी कोमल और कभी तेजस्व भाववाला बन जाये।

काले मृदर्यो भवति काले भवति दारुणः ।
स वै सुखमवाप्नोति लोकेऽमुष्मिन्निहैव च ।24।

जो मौका देखकर कोमल होता है और उपयुक्त अवसर आने पर भयंकर भी बन जाता है, वही इहलोक और परलोक में सुख पाता है ।

क्षमाकालांस्तु वक्ष्यामि शृणु में विस्तरेणतान् ।
ये ते नित्यमसंत्याज्या यथा प्राहुर्मनीषिणः ।25।

अब मैं तुम्हें क्षमा के योग्य अवसर बताता हूँ, उन्हें विस्तारपूर्वक सुनो, जैसा कि मनीषी पुरुष कहते हैं, उन अवसरों का तुम्हें कभी त्याग नहीं करना चाहिये।

पूर्वोपकारी यस्ते स्यादपराधे गरीयसि ।
उपकारेण तत् तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः ।26।

जिसने पहले कभी तुम्हारा उपकार किया हो, उससे यदि कोई भारी अपराध हो जाय तो भी पहले के उपकार का स्मरण करके उस अपराधी के अपराध को तुम्हें क्षमा कर देना चाहिये ।

अबुद्धिमाश्रितानां तु क्षन्तव्यमपराधिनाम् ।
न हि सर्वत्र पाण्डित्यं सुलभ पुरुषेण वै ।27।

जिन्होंने अनजान में अपराध कर डाला हो, उनका वह अपराध क्षमा के ही योग्य हैं, क्योंकि किसी भी पुरुष के लिये सर्वत्र विद्वता (बुद्धिमानी) ही सुलभ हो, यह सम्भव नहीं है ।

अथ चेद् बुद्धिजं कृत्वा ब्रूयुस्ते तदबुद्धिजम् ।
पापन् स्वल्पेऽपि तात् हन्यादपराधे तथानृजून् ।28।

परन्तु वो जानबूझ कर किये हुए अपराध को भी उसे कर लेने के बाद अनजान में किया हुआ बताते हो, उन उद्दण्ड पापियों को थोड़े से अपराध के लिये भी अवश्य दण्ड देना चाहिये ।

सर्वस्यैकोऽपराधस्ते क्षन्तव्यः प्राणिनो भवेत् ।
द्वितीये सति वध्यस्तु स्वल्पेऽप्यपकृते भवेत् ।29।

सभी प्राणियों का एक अपराध तो तुम्हें क्षमा ही कर देना चाहिये यदि उससे फिर दुबारा अपराध बन जाय तो थोड़े से अपराध के लिए भी उसे दण्ड देना आवश्यक है ।

अजानता भवेत् कश्चिदपराधः कृतो यदि ।
क्षन्तव्यमेव तस्याहु सुपरीक्ष्य परीक्षया । 30।

अच्छी तरह जाँच पड़ताल करने पर यदि यह सिद्ध हो जाय कि अमुक अपराध अनजान में ही हो गया है, तो उसे क्षमा के ही योग्य बताया गया है ।

मृदुना दारुणं हान्ति मृदुना हन्त्यदारुणम् ।
नासाध्यं मृदुना किंचित् तस्मात् तीव्रतरं मृदु ।31।

मनुष्य कोमलभाव (समनीति) के द्वारा उग्र स्वभाव तथा शान्त स्वभाव के शत्रु का भी नाश कर देता है, मृदुता से कुछ भी असाध्य नहीं है । अतः मृदुतापूर्ण नीति को तीव्रतर (उत्तम) समझें ।

देशकालौ तु सम्प्रेक्ष्य बलाबलमथात्मनः ।
नादेशकाले किंचित् स्याद् देशकालौ प्रतीक्षताम् ।
तथा लोकभयाच्चैव क्षन्तव्यमपराधिनः ।32।

देश, काल तथा अपने बलाबल का विचार करक ही मृदुता (सामनीति) का प्रयोग करना चाहिये । अयोग्य देश अथवा अनुपयुक्त काल में उसके प्रयोग से कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता ; अतः उपयुक्त देश–काल की प्रतीक्षा करनी चाहिये। वहीं लोक के भय से भी अपराधी को क्षमादान देने की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार से क्षमा के अवसर बताये गये हैं। उनके विपरीत बर्ताव करने वालों को राह पर लाने के लिए तेज (उत्तेजनापूर्ण बर्ताव) का अवसर कहा गया है। नरेश्वर! धृतराष्ट्र के पुत्र लोभी तथा सदा आपका अपकार करने वाले हैं; अतः उनके प्रति आपके तेज के प्रयोग का यह अवसर आया है, ऐसा मेरा मत है। कौरवों के प्रति अब क्षमा का कोई अवसर नहीं है। अब तेज प्रकट करने का अवसर प्राप्त है; अतः उन पर आपको अपने तेज का ही प्रयोग करना चाहिये। कोमलतापूर्ण बर्ताव करने वाले की सब लोग अवहेलना करते हैं और तीक्ष्ण स्वभाव वाले पुरुष से सबको उद्वेग प्राप्त होता है। जो उचित अवसर आने पर इन दोनों का प्रयोग करना जानता है, वही सफल भूपाल है ।

युधिष्ठर के द्वारा क्रोध की निन्दा और क्षमा की प्रशंसा

क्रोधो हन्ता मनुष्याणां क्रोधो भावयिता पुनः ।
इति विद्धि महाप्राज्ञे क्रोधमूलौ भवाभवौ ।1।

महाभारत द्वितीय पर्व, 29 पृष्ठ 1024

युधिष्ठिर बोले – परम बुद्धिमानी द्रौपदी ! क्रोध ही मनुष्यों को मारने वाला है और क्रोध ही यदि जीत लिया जाये तो अभ्युदय करने वाला है । तुम यह जान लो कि उन्नति और अवनति दोनों के लिये क्रोध मूल ही है (क्रोध को जीतने से उन्नति और उसके वशीभूत होने से अवनति होती है)

यो हि संहरते क्रोधं भवस्तस्य सुशोभने ।
यः पुनः पुरुषः क्रोधं नित्यं न सहते शुभे ।
तस्याभावाय भवति क्रोधः परमदारुणः ।2।

सुशोभने ! जो क्रोध को रोक लेता है, उसकी उन्नति होती है और जो मनुष्य क्रोध के वेग को कभी सहन नहीं कर पाता, उसके लिये वह परम भयंकर क्रोध, विनाशकारी बन जाता है ।

क्रोधमूलो विनाशो हि प्रजानामिह दृश्यते ।
तत् कथं मादृशः क्रोधमुत्सृजेल्लोकनाशनम् ।3।

इस जगत में क्रोध के कारण लोगों का नाश होता दिखायी देता है; इसलिए मेरे जैसा मनुष्य लोक विनाशक क्रोध का उपयोग दूसरों पर कैसा करेगा ?

क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात् क्रुद्धो हन्याद् गुरुनपि ।
क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते ।4।

क्रोधी मनुष्य पाप कर सकता है, क्रोध के वशीभूत मानव गुरुजनों को भी हत्या कर सकता है और क्रोध में भरा हुआ पुरुष अपनी कठोर वाणी द्वारा श्रेष्ठ मनुष्यों का भी अपमान कर देता है।

वाच्यावाच्ये हि कुपितो न प्रजानाति कर्हिचित् ।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते तथा ।5।

क्रोधी मनुष्य कभी यह नहीं समझ पाता कि क्या कहना चाहिये और क्या नहीं । क्रोध के लिए कुछ भी अकार्य अथवा अवाच्य नहीं है ।

हिंस्यात क्रोधादवध्यांस्तु वध्यान् सम्पूजयीत च ।
आत्मानमपि च क्रुद्धः प्रेषयेद् यमसादनम् ।6।

क्रोधवश अवध्य पुरुषों की भी हत्या कर सकता है और वध के योग्य मनुष्यों की भी पूजा में तत्पर हो सकता है । इतना ही नहीं, क्रोधी मानव (आत्महत्या द्वारा) अपने आपको भी यमलोक का अतिथि बना सकता है।

एतान् दोषान् प्रपश्यद्भिर्जितः क्रोधो मनीषिभः ।
इच्छद्भिः परमं श्रेय इह चामुत्र चोत्तमम् ।7।

इन दोषों को देखने वाले मनस्वी पुरुषों ने जो इहलोक और परलोक में भी परम उत्तम कल्याण की इच्छा रखते हैं, क्रोध को जीत लिया है ।

तं क्रोधं वर्जितं धीरैः कथमस्मद्विधश्चरेत् ।
एतद् द्रौपदी संधाय न में मन्युः प्रवर्धते ।8।

अतः धीर पुरुषों ने जिसका परित्याग कर दिया है उस क्रोध को मेरे जैसा मनुष्य कैसे उपयोग में ला सकता है। द्रुपदकुमारी ! यही सोचकर मेरा क्रोध कभी बढ़ता नहीं है।

आत्मानं च पराश्चैव त्रायते महतो भयात् ।
क्रुध्यन्तमप्रतिक्रुध्यन् द्वयोरेष चिकित्सकः ।9।

क्रोध करने वाले पुरुष के प्रति जो बदले में क्रोध नहीं करता, वह अपने को और दूसरों को भी महान भय से बचा लेता है । वह अपने और पराये दोनों के दोषों को दूर करने के लिये चिकित्सक बन जाता है ।

मूढ़ो यदि क्लिश्यमानः क्रुध्यतेऽशक्तिमान् नरः ।
बलीयसां मनुष्याणां त्यजत्यात्मानमात्मना ।10।

यदि मूढ़ एवं असमर्थ मनुष्य दूसरों के द्वारा क्लेश दिये जाने पर स्वयं भी बलिष्ठ मनुष्यों पर क्रोध करता है तो वह अपने ही द्वारा अपने आपका विनाश कर देता है।

तस्यात्मानं संत्यजतो लोका नश्यन्त्यनात्मनः ।
तस्माद् द्रौपद्यशक्तस्य मन्योर्नियमनं स्मृतम् ।11।

अपने चित्त को वश में न रखने के कारण क्रोधवश देहत्याग करने वाले उस मनुष्य के लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं । अतः द्रुपद कुमारी ! असमर्थ के लिए अपने क्रोध को रोकना ही अच्छा माना गया है ।

विद्धांस्तथैव यः शक्तः क्लिश्यमानो न कुप्यति ।
अनाशयित्वा क्लेष्टारं परलोके च नन्दति ।12।

इसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष शक्तिशाली होकर भी दूसरों के द्वारा क्लेश दिए जाने पर स्वयं क्रोध नहीं करता, वह क्लेश देने वाले का नाश न करके परलोक में भी आनन्द का भागी होता है ।

तस्मात् बलवता चैव दुर्बलेन च नित्यदा ।
क्षन्तव्यं पुरुषेणाहुरापत्स्वपि विजानता ।13।

इसलिए बलवान् या निर्बल सभी विज्ञ मनुष्यों को सदा आपत्ति काल में भी क्षमाभाव का ही आश्रय लेना चाहिये ।

मन्योर्हि विजयं कृष्णे प्रशंसन्तीह साधवः ।
क्षमावतो जयो नित्यं साधोरिह सतां मतम् ।14।

कृष्णे ! साधु पुरुष क्रोध को जीतने की ही प्रशंसा करते हैं। संतों का यह मत है कि इस जगत में क्षमाशील साधु पुरुष की सदा जय होती है ।

सत्यं चानृततः श्रेयो नृशंस्याच्चानृशंसता ।
तमेवं बहुदोषं तु क्रोधं साधुविवर्जितम् ।
मादृशः प्रसृजेत् कस्मात् सुयोधनवधादपि ।।15।।

झूठ से सत्य श्रेष्ठ है। क्रूरता से दयालुता श्रेष्ठ है, अतः दुर्योधन मेरा वध कर डाले तो भी इस प्रकार अनेक दोषों से भरे हुए और सत्पुरुषों द्वारा परित्यक्त क्रोध का मेरे जैसा पुरुष कैसे उपयोग कर सकता है ?

तेजस्वीति यमाहुर्वै पण्डिता दीर्घदर्शिनः ।
न क्रोधोऽभ्यन्तरस्तस्य भवतीति विनिश्चितम् ।।16।।

दूरदर्शी विद्वान् जिसे तेजस्वी कहते हैं, उनके भीतर क्रोध नहीं होता; यह निश्चित है ।

यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं प्रज्ञया प्रतिबाधते ।
तेजस्विनं तं विद्वांसो मन्यन्ते तत्त्वदर्शिनः ।।17।।

जो उत्पन्न हुए क्रोध को अपनी बुद्धि से दबा देता है, उसे तत्वदर्शी विद्वान तेजस्वी मानते हैं ।

क्रुद्धो हि कार्यं सुश्रोणि न यथावत् प्रपश्यति ।
नाकार्यं न च मर्यादां नरः क्रुद्धोऽनुपश्यति ।18।

सुन्दरी ! क्रोधी मनुष्य किसी कार्य को ठीक–ठीक नहीं समझ पाता । वह यह भी नहीं जानता कि मर्यादा क्या है अर्थात क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिए ।

हन्त्यवध्यानपि क्रुद्धो गुरुन् क्रुद्धस्तुदत्यपि ।
तस्मात् तेजसि कर्तव्यः क्रोधो दूरे प्रतिष्ठितः ।19।

क्रोधी मनुष्य अवध्य पुरुषों का वध कर देता है। क्रोधी मनुष्य गुरूजनों को कटु वचनों द्वारा पीड़ा पहुँचाता है। इसलिए जिसमें तेज हो, उस पुरुष को चाहिए कि वह क्रोध को अपने से दूर रखे।

दाक्ष्यं ह्यमर्षः शौर्यं च शीघ्रत्वमिति तेजसः ।
गुणाः क्रोधाभिभूतेन न शक्याः प्राप्तुमञ्जसा ।20।

दक्षता, अमर्ष, शौर्य और शीघ्रता ये तेज के गुण हैं । जो मनुष्य क्रोध से दबा हुआ है, वह इन गुणों को सहज में ही नहीं पा सकता ।

क्रोधं त्यक्त्वा तु पुरुषः सम्यक् तेजोऽभिपद्यते ।
कालयुक्तं महाप्राज्ञे क्रुद्धैस्तेजः सुदुःसहम् ।21।

क्रोध का त्याग करके मनुष्य भली–भाँति तेज प्राप्त कर लेता है । महाप्राज्ञे ! क्रोधी पुरुषों के लिए समय के उपयुक्त तेज अत्यन्त दुःसह है ।

क्रोधस्त्वपण्डितैः शाश्वत् तेज इत्यभिनिश्चितम् ।
रजस्तु लोकनाशाय विहितं मानुषं प्रति ।22।

मूर्ख लोग क्रोध को ही सदा तेज मानते हैं। परन्तु रजोगुणजनित क्रोध का यदि मनुष्यों के प्रति प्रयोग हो तो वह लोगों के नाश का कारण होता है।

तस्माच्छश्वत् त्यजेत् क्रोधं पुरुषः सम्यगाचरन् ।
श्रेयान् स्वधर्मानपगो न क्रुद्ध इति निश्चितम् ।23।

अतः सदाचारी पुरुष सदा क्रोध का परित्याग करे। अपने वर्ण धर्म के अनुसार न चलने वाला मनुष्य (अपेक्षाकृत) अच्छा, किन्तु क्रोधी नहीं अच्छा यह निश्चय है।

यदि सर्वमबुद्धीनामतिक्रान्तमचेतसाम् ।
अतिक्रमो मद्विधस्य कथंस्वित् स्यादनिन्दिते ।24।

साध्वी द्रौपदी ! यदि मूर्ख और अविवेकी मनुष्य क्षमा आदि सद्गुणों का उल्लंघन कर जाते हैं , तो मेरे जैसा विज्ञ पुरुष उनका अतिक्रमण कैसे कर सकता है ?

यदि न स्युर्मानुषेषु क्षमिणः पृथिवी समाः ।
न स्यात संधिर्मनुष्याणां क्रोधमूलो हि विग्रहः ।25।

यदि मनुष्यों में पृथ्वी के समान क्षमाशील पुरुष न हों तो मानवों में कभी सन्धि हो ही नहीं सकती; क्योंकि झगड़े की जड़ तो क्रोध ही है ।

अभिषक्तो ह्यभिषजेदाहन्याद् गुरुणा हतः ।
एवं विनाशो भूतानामधर्मः प्रथितो भवेत् ।26।

यदि कोई अपने को सतावे तो स्वयं भी उसको सतावें। औरों की तो बात ही क्या है, यदि गुरुजन अपने को मारें तो उन्हें भी मारे बिना न छोड़े; ऐसी धारणा रखने के कारण सब प्राणियों का ही विनाश हो जाता है और अधर्म बढ़ जाता है ।

आकृष्टः पुरुष सर्वं प्रत्याक्रोशेदनन्तरम् ।
प्रतिहन्याद्धतश्चैव तथा हिंस्याच्च हिंसितः ।27।

यदि सभी क्रोध के वशीभूत हो जायें तो एक मनुष्य दूसरे के द्वारा गाली खाकर स्वयं भी बदले में गाली दे सकता है। मार खाने वाला मनुष्य बदले में मार सकता है। एक का अनिष्ट होने पर वह दूसरों का अनिष्ट कर सकता है।

हन्युर्हि पितरः पुत्रान् पुत्रश्चापि तथा पितृन ।
हन्युश्य पतयो भार्याः पतीन् भार्यास्तथैव च ।28।

पिता पुत्रों को मारेगा और पुत्र पिता को, पति पत्नि को मारेगा और पत्नि पति को।

एवं संकपिते लोके शमः कृष्णे न विद्यते ।
प्रजानां संधिमूलं हि शर्म विद्धि सुभानेन ।29।

कृष्णे ! इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् के क्रोध का शिकार हो जाने पर भी कहीं शान्ति नहीं रहती । शुभानने ! तुम यह जान लो कि सम्पूर्ण प्रजा की शान्ति सन्धिमूलक ही है ।

ताः विक्षपेरन् प्रजाः सर्वाः क्षिप्रं द्रौपदी तादृशे ।
तस्मान्मन्युर्विनाशाय प्रजानामभवाय च ।30।

द्रौपदी ! यदि राजा तुम्हारे कथनानुसार क्रोधी हो जावें, तो शीघ्र ही सारी प्रजाओं का नाश हो जायेगा । अतः यह समझ लो कि क्रोध प्रजावर्ग के नाश और अवनति का कारण है ।

यस्मात् तु लोके दृश्यन्ते क्षमिणः पृथिवीसमाः ।
तस्माज्जन्म च भूतानां भवश्च प्रतिपद्यते ।31।

इस जगत में पृथ्वी के समान क्षमाशील पुरुष भी देखे जाते हैं, इसलिए प्राणियों की उत्पत्ति और वृद्धि होती रहती है ।

क्षन्तव्यं पुरुषेणेह सर्वापत्सु सुशोभने ।
क्षमावतो हि भूतानां जन्म चैव प्रकीर्तितम् ।32।

सुशोभने ! पुरुष को सभी आपत्तियों में क्षमावान रहना चाहिये । क्षमाशील पुरुष से ही समस्त प्राणियों का जीवन बताया गया है ।

आक्रुष्टस्ताडितः क्रुद्धः क्षमते यो बलीयसा ।
यश्च नित्यं जितक्रोधो विद्वानुत्तमपुरुष ।33।

जो बलवान् पुरुष के गाली देने या कुपित होकर मारने पर भी क्षमा कर जाता है, तथा जो सदा अपने क्रोध को काबू में रखता है, वही विद्वान् है और वही श्रेष्ठ पुरुष है।

प्रभाववानपि नरस्तस्य लोकाः सनातनाः ।
क्रोधनस्त्वल्पविज्ञानः प्रेत्य चेह च नश्यति ।

वही मनुष्य प्रभावशाली कहा जाता है। उसी को सनातन लोक प्राप्त होते हैं। क्रोधी मनुष्य अल्पज्ञ होता है। वह इस लोक और परलोक दोनों में विनाश का ही भागी होता है।

अत्राप्युदाहरन्तोमा गाथा नित्यं क्षमावताम् ।
गीताः क्षमावताः कृष्णे काश्यपेन् महात्मना ।35।

इस विषय में जानकार लोग क्षमावान् पुरुषों की गाथा का उदाहरण देते हैं। कृष्णे ! क्षमावान् काश्यप ने इस गाथा को गान किया है।

क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः क्षमा वेदाः क्षमा श्रुतम् ।
य एतदेवं जानाति स सर्वं क्षन्तुमर्हति ।36।

क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है और क्षमा शास्त्र है । जो इस प्रकार जानता है, वह सब कुछ क्षमा करने के योग्य हो जाता है।

क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं क्षमा भूतं च भावि च ।
क्षमा तप क्षमा शौचं क्षमयेदं धृतं जगत् ।37।

क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा भूत है, क्षमा भविष्य है, क्षमा तप है और क्षमा शौच है। क्षमा ने ही सम्पूर्ण जगत् को धारण कर रखा है ।

अति यज्ञविदां लोकान् क्षमिणः प्राप्नुवन्ति च ।
अति ब्रह्मविदां लोकानति चापि तपस्विनाम् ।38।

क्षमाशील मनुष्य यज्ञ वेत्ता, ब्रह्मवेत्ता और तपस्वी लोगों से भी ऊँचें लोक प्राप्त करता है।

अन्ये वै यजुषां लोकाः कर्मिणामपरे तथा ।
क्षमावतां ब्रह्मलोके लोकाः परमपूजिताः ।39।

(सकाम भाव से) यज्ञकर्मो का अनुष्ठान करने वाले पुरुषों के लोक दूसरे हैं एवं (सकाम भाव से) वापी, कूप, तडाग और दान आदि कर्म करने वाले मनुष्यों के लोक दूसरे हैं । परन्तु क्षमावानों के लोक ब्रह्मलोक के अन्तर्गत हैं; जो अत्यन्त पूजित है ।

क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम् ।
क्षमा सत्यं सत्यवतां क्षमा यज्ञः क्षमा शमः ।40।

क्षमा तेजस्वी पुरुषों का तेज है, क्षमा तपस्वियों का ब्रह्म है। क्षमा सत्यवादी पुरुषों का सत्य है। क्षमा यज्ञ है और क्षमा शम (मनोनिग्रह) है।

तां क्षमां तादृशीं कृष्णे कथमस्मद्विधस्त्यजेत् ।
यस्यां ब्रह्म च सत्यं च यज्ञा लोकाश्चधिष्ठिताः ।41।

कृष्णे ! जिसका महत्त्व ऐसा बताया गया है, जिसमें ब्रह्म, सत्य यज्ञ और लोक सभी प्रतिष्ठित हैं, उस क्षमा को मेरे जैसा मनुष्य कैसे छोड़ सकता है।

क्षन्तव्यमेव सततं पुरुषेण विजानता ।
यदा हि क्षमते सर्वं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।42।

विद्वान् पुरुष को सदा क्षमा का ही आश्रय लेना चाहिये। जब मनुष्य सब कुछ सहन कर लेता है, तब वह ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है ।

क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम् ।
इह सम्मानमृच्छन्ति परत्र च शुभां गतिम् ।43।

क्षमावानों के लिये ही यह लोक है । क्षमावानों के लिये ही परलोक है। क्षमाशील पुरुष इस जगत् में सम्मान और परलोक में उत्तम गति पाते हैं ।

येषां मन्युर्मनुष्याणां क्षमयामिहतः सदा ।
तेषां परतरे लोकास्तस्मात् क्षान्तिः परामता ।44।

जिन मनुष्यों का क्रोध सदा क्षमाभाव से दबा रहता है, उन्हें सर्वोत्तम लोक प्राप्त होते हैं। अतः क्षमा सबसे उत्कृष्ट मानी गयी है ।

इति गीताः काश्यपेन गाथा नित्यं क्षमावताम् ।
श्रुत्वा गाथाः क्षमायास्त्वं तुष्य द्रौपदि मा क्रुधः ।45।

इस प्रकार काश्यप जी ने नित्य क्षमाशील पुरुषों को इस गाथा का गान किया है । द्रौपदी ! क्षमा की यह गाथा सुनकर सन्तुष्ट हो जाओं, क्रोध न करो।

पितामहः शान्तनवः शमं सम्पूजयिष्यति ।
कृष्णश्च देवकीपुत्रः शमं सम्पूजयिष्यति ।46।

मेरे पितामह शान्तनुनन्दन भीष्म शान्ति भाव का ही आदर करेंगे । देवकीनन्दन श्रीकृष्ण भी शान्ति भाव का ही आदर करेंगे ।

आचार्यो विदुरः क्षत्ता शममेव वदिष्यतः ।
कृपश्च संजयश्चैव क्षमेव वदिष्यतः ।47।

आचार्य द्रोण और विदुर भी शान्ति को ही अच्छा कहेंगे। कृपाचार्य और संजय भी शान्त रहना ही अच्छा बतायेंगे।

सोमदत्तो युयुत्सुश्च द्रोणपुत्रस्तथैव च ।
पितामहश्च नो व्यासः शमं वदति नित्यशः ।48।

सोमदत्त, युयुत्सु, अश्वत्थामा तथा हमारे पितामह व्यास भी सदा शान्ति का ही उपदेश देते हैं।

एतैर्हि राजा नियतं चोद्यमानः शमं प्रति ।
राज्यं दातेति मे बुद्धिर्न चेल्लोभान्नशिष्यति ।49।

ये सब लोग यदि राजा धृतराष्ट्र को सदा शान्ति के लिए प्रेरित करते रहेंगे तो वे अवश्य मुझे राज्य दे देंगे। ऐसा मुझे विश्वास है। यदि नहीं देंगे तो लोभ के कारण नष्ट हो जायेंगे।

कालोऽयं दारुणः प्राप्तो भरतानामभूतये ।
निश्चितं में सदैवैतत् पुरस्तादति भाविनि ।50।
दर्योधनो नार्हतीति क्षमामेवं न विन्दति ।
अर्हस्तत्राहमित्येवं तस्मान्मां विन्दते क्षमा ।51।

इस समय भरतवंश के विनाश के लिये यह बड़ा भयंकर समय आ गया है। भामिनी ! मेरा पहले से ही ऐसा निश्चित मत है कि दुर्योधन कभी भी इस प्रकार क्षमाभाव को नहीं अपना सकता, वह इसके योग्य नहीं है। मैं इसके योग्य हूँ, इसलिये क्षमा मेरा ही आश्रय लेती है।

एतदात्मवतां वृत्तमेष धर्मः सनातनः ।
क्षमा चैवानृशंस्यं च तत् कर्तास्म्यहमञ्जसा ।52।

क्षमा और दया यही जितात्मा पुरुषों का सदाचार है और यही सनातन धर्म है। अतः मैं यथार्थ रुप से क्षमा और दया को ही अपनाऊँगा ।

क्षमा की शक्ति – 1

महर्षि वशिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं । उनकी पत्नी का नाम अरुन्धती है। उन्होंने अपनी तपस्या के बल से देवताओं के लिए भी अजेय काम और क्रोध पर विजय प्राप्त कर ली थी। उन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया था। इसलिए उनका नाम वशिष्ठ हुआ। विश्वामित्र के बहुत अपराध करने पर भी उन्होंने अपने मन में क्रोध नहीं आने दिया और उन्हें क्षमा कर दिया, यद्यपि विश्वामित्र ने उनके सौ पुत्रों का नाश कर दियाा था, और वशिष्ठ में बदला लेने की पूरी शक्ति थी। फिर भी उन्होंने कोई प्रतिकार नहीं किया। वे यमपुरी से भी अपने पुत्रों को ला सकते थे, परन्तु क्षमावश यमराज के नियमों का उल्लंघन नहीं किया। उन्हीं को पुरोहित बनाकर इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने पृथ्वी पर विजय प्राप्त की थी और अनेक यज्ञ किये थे। कान्यकुब्ज देश में गाधि नाम के एक बहुत बड़े राजा थे। वे राजर्षि कुशिक के पुत्र थे। उन्हीं से विश्वामित्र का जन्म हुआ। एक बार विश्वामित्र अपने मित्र के साथ मरुधन्य देश में शिकार खेलते–खेलते थककर वशिष्ठ के आश्रम में आये। वशिष्ठ ने विधिपूर्वक उनका स्वागत सत्कार किया और अपनी कामधेनु नन्दिनी के प्रताप से अनकों प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चेष्टा आदि के द्वारा उन्हें तृप्त किया। इस अतिथ्य से विश्वामित्र को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि ब्राह्मण! आप मुझ से एक अर्बुद गाएं या मेरा राज्य ही ले लीजिए, परन्तु अपनी कामधेनु नन्दिनी मुझे दे दीजिये। वशिष्ठ बोले, मैंने यह दुधारु गाय देवता,अतिथि, पितर और यक्षों के लिये रख छोड़ी है। आपके राज्य के बदले में भी यह देने योग्य नहीं है। विश्वामित्र बोले "मैं क्षत्रिय हूँ और आप ब्राह्मण ! आप शान्त महात्मा हैं, तपस्या स्वाध्याय में लगे रहते हैं । आप इसकी रक्षा कैसे करेंगे ? आप एक अर्बुद गाय के बदले में भी इसे नहीं दे रहे हैं तो मैं बलपूर्वक ल जाऊँगा, कदापि न छोड़ूंगा। वशिष्ठ जी बोल आप बलवान क्षत्रिय है, जो चाहे तुरन्त कर सकते हैं। फिर सोच विचार क्या है? जब विश्वामित्र बलपूर्वक नन्दिनी को हँकवाकर ले जाने लगे, तब वह डकारती हुई वशिष्ठ जी के पास आकर खड़ी हो गयी। वशिष्ठ ने कहा – कल्याणी! मैं तुम्हारा क्रन्दन सुन रहा हूँ। विश्वामित्र तुम्हें बलपूर्वक छीनकर ले जा रहे हैं। मैं क्षमाशील ब्राह्मण हूँ, क्या करु लाचारी है। नन्दिनी बोली – "भगवान ये सब मुझे चाबुक और डण्डे से पीट रहे हैं, मैं अनाथ की तरह डर रही हूँ। आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? वशिष्ठ उसका करुणा–क्रन्दन सुनकर भी न क्षुब्ध हुए और न धैर्य से विललित। वे बोले – क्षत्रियों का बल है तेज और ब्राह्मणों का क्षमा। मेरा प्रधान धर्म बल क्षमा मेरे पास है। तुम्हारी इच्छा हो तो जाओ। नन्दिनी ने कहा – आपने मुझे छोड़ा तो नहीं है ? यदि नहीं तो बलपूर्वक मुझे कोई नहीं ले जा सकता। वशिष्ठ जी बोले, कल्याणी ! मैंने तुझे नहीं छोड़ा। यदि, तुझमें शक्ति है तो रह जा देख, तेरे बच्चे को ये लोग मजबूत रस्सी से बाँधकर लिए जा रहे हैं ।

वशिष्ठ की बात सुनकर नन्दिनी का सिर ऊपर उठ गया। आँखें लाल हो गयी। वह वज्रकर्कश ध्वनि करने लगी। उसकी भीषण मूर्ति देखकर सैनिक भाग चले। जब लोगों ने उसको फिर ले जाने की चेष्टा की, तब वह सूर्य के समान चमकने लगी। उसके रोम–रोम से मानो अंगारों की वर्षा होने लगी। उस के एक–एक अंग से पह्लव, द्रविण, शक, यवन, शबर, पौण्ड्र, किरात, चीन, हूण, सिंहली, बर्वर, रवस, यूनानी और म्लेच्छ प्रकट हो गये तब वे हथियार उठाकर विश्वामित्र के एक–एक सैनिक पर पाँच–पाँच, सात–सात करके टूट पड़े। भगदड़ मच गई। आश्चर्य तो यह था कि नन्दिनी–पक्ष का कोई भी सैनिक विश्वामित्र सौनिक पर प्राणान्तक प्रहार नहीं करता था। जब उनकी सेना बारह कोस भाग गई और उसे कोई रक्षक नहीं मिला, तब विश्वामित्र यह ब्रह्मतेज देखकर आश्चर्य–चकित होकर कहने लगे क्षत्रिय भाव से बड़ी ग्लानि हुई। वे उदास होकर कहने लगे क्षत्रिय बल को धिक्कार है। वास्तव में ब्रह्मतेज का बल ही सच्चा बल है। सच पूछो तो इन दोनों बल का कारण तपोबल ही प्रधान है। यह विचार कर उन्होंने अपना विशाल राज्य सौभाग्यलक्ष्मी तथा सांसारिक सुख भोग छोड़ दिये और तपस्या करने लगे। तपस्या से सिद्धि प्राप्त करके उन्होंने सारे लोकों को अपने तेज से भर दिया और ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। उन्होंने इन्द्र के साथ सोमपान भी किया था।

क्षमा की शक्ति – 2

राज इक्ष्वाकु के वंश में कल्माषपाद नाम का एक राजा हो गया है। एक दिन की बात है वह शिकार खेलने के लिये वन में गया। लौटने के समय वह एक ऐसे मार्ग से जाने लगा, जिससे केवल एक ही मनुष्य चल सकता था। वह थका मांदा, भूखा प्यासा तो था ही, उसी मार्ग पर सामने से शक्ति मुनि आते दिख पड़े। शक्ति मुनि वशिष्ठ के सौ पुत्रों में सबसे बड़े थे। राजा ने कहा – तुम हट जाओं। मेरे लिये रास्ता छोड़ दो। शक्ति ने कहा महाराज! सनातन धर्म के अनुसार क्षत्रिय का यह कर्त्तव्य है कि वह ब्राह्मण के मार्ग छोड़ दे। इस प्रकार दोनों में कुछ कहा सुनी हो गई। न ऋषि हटे न राजा। राजा के हाथ में चाबुक था। उन्होंने बिना सोचे विचारे ऋषि पर चला दिया। शक्तिमुनि ने राजा को अन्यायी समझकर उन्हें शाप दे दिया कि "अरे नृपाधम ! तू राक्षस की तरह तपस्वी पर चाबुक चलाता है। इसलिए जा राक्षस हो जा। राजा राक्षस भयाक्रान्त हो गया। उसने कहा – तुमने मुझे अयोग्य शाप दिया है इसलिये लो मैं तुमसे ही राक्षसपना प्रारम्भ करता हूँ। इसके बाद कल्माषपाद शक्ति मुनि को मारकर तुरन्त खा गया। केवल शक्तिमुनि को ही नहीं वशिष्ठ के जितने पुत्र थे, सभी को उसने खा लिया।

शक्ति और वशिष्ठ के दूसरें पुत्रों के भक्षण में कल्माष का राक्षसपना तो

कारण था ही, इसके सिवा विश्वामित्र ने भी पहले द्वेष का स्मरण करके किंकर नाम के राक्षस को आज्ञा दी कि वह कल्माषपाद में प्रवेश कर जाये जिसके कारण वह ऐसे नीच कर्म में प्रवृत्त हुआ। वशिष्ठ जी को जब यह बात मालूम हुई उन्होंने जाना कि इसमें विश्वामित्र की प्रेरणा है फिर भी उन्होंने अपने शोक के वेग को वैसे ही धारण कर लिया जैसे पर्वतराज सुमेरु पृथ्वी को। उन्होंने प्रतिकार का सामर्थ्य होने पर भी उनसे किसी प्रकार का बदला नहीं लिया।

एक बार महर्षि वशिष्ठ अपने आश्रम पर लौट रहे थे। उसी समय ऐसा जान पड़ा , मानो उनके पीछे–पीछे कोई षांग वेदों का अध्ययन करता हुआ चल रहा हो। वशिष्ठ ने पूछा कि मेरे पीछे–पीछे कौन चल रहा है। आवाज आई मैं आपकी पुत्रवधु शक्ति पत्नी अदृश्यन्ति हूँ। वशिष्ठ बोले बेटी ! मेरे पुत्र शक्ति के समान स्वर से षांग वेदों का अध्ययन कौन कर रहा है? अदृश्यन्ति ने कहा – आपका पौत्र मेरे गर्भ में है। वह बारह वर्ष से गर्भ में ही वेदाध्ययन कर रहा है। यह सुनकर वशिष्ठ मुनि को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा अच्छी बात है। मेरी वंश परम्परा का उच्छेद नहीं हुआ। यही सोचते हुए वे लौट ही रहे थे कि एक निर्जन वन में कल्माषपाद से उनकी भेंट हुई। वह विश्वामित्र के द्वारा प्रेरित उग्र राक्षस से आविष्ट होकर वशिष्ठ मुनि को खा जाने को दौड़ा। उस क्रूरकर्मा राक्षस को देखकर अदृश्यन्ति डर गई। और कहने लगी, भगवान! देखिये देखिये यह हाथ में सूखा काठ लिए भयंकर राक्षस दौड़ा आ रहा है। आप इससे मेरी रक्षा किजिए। वशिष्ठ ने कहा, बेटी डरो मत! यह राक्षस नहीं कल्माषपाद है। यह कहकर महर्षि वशिष्ठ ने हुँकार से ही उसे रोक दिया। इसके बाद उन्होंने जल को हाथ में लेकर मंत्र से अभिमन्त्रित किया और कल्माषपाद के ऊपर डाला। वह तुरन्त शाप से मुक्त हो गया। बारह वर्ष के बाद आज वह शाप से छूटा। उसका तेज बढ़ गया वह होश में आ गया और हाथ जोड़कर श्रेष्ठ महर्षि वशिष्ठ से कहने लगा, महाराज मैं सुक्षस का पुत्र कल्माषपाद आपका यजमान हूँ। आज्ञा कीजिये मैं आपकी क्या सेवा करुँ। वशिष्ठ जी ने कहा – यह सब बात तो भैया समय–समय की है। अब तुम जाओं और अपने राज्य की देखभाल करो। हाँ, इतना ध्यान रखना कभी किसी ब्राह्मण का अपमान न हो। राजा ने प्रतिज्ञा की महा भाग्यवान ऋषि श्रेष्ठ मैं आपकी आज्ञा का पालन करुंगा, कभी ब्राह्मणों का तिरस्कार नहीं करुंगा। उनका प्रेम से सत्कार करुंगा। क्षमाशील महर्षि वशिष्ठ इसी पुत्रघाती राजा के साथ अयोध्या में आये और अपने कृपा प्रसाद से उसे पुण्यवान बनाया।

इधर वशिष्ट के आश्रम पर अदृश्यन्ति के गर्भ से पराशर का जन्म हुआ। स्वयं भगवान वशिष्ठ ने पराशर के जातकर्मादि संस्कार कराये। धर्मात्मा पराशर वशिष्ठ मुनि को ही अपना पिता समझते थे और पिताजी! पिताजी! कहकर पुकारते थे। एक दिन अदृश्यन्ति ने बतलाया कि ये तुम्हारे पिता नहीं दादा हैं।

इसी प्रसंग में पराशर जी को यह भी मालूम हुआ कि मेरे पिताजी को राक्षस ने खा लिया। यह सुनकर उनके चित्त में बड़ा दुःख हुआ, और उन्होंने सब राजाओं पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया। महर्षि वशिष्ठ ने प्राचीन कथायें कहकर उन्हें समझाया और आज्ञा दी कि तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम क्षमा करो, किसी को पराजित मत करो। तुम्हें मालूम ही है कि इस जगत् को राजाओं की कितनी आवश्यकता है। वशिष्ठ के समझाने–बुझाने से पराशर ने राजाओं को पराजित करने का विचार तो छोड़ दिया परन्तु राक्षसों के विनाश के लिए घोर यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ से जब राक्षसों का नाश होने लगा तब महर्षि पुलस्त्य और वशिष्ठ ने उन्हें समझाया – पराशर ! क्षमा ही परम धर्म है। तुम्हारे सभी पूर्वज क्षमा की मूर्ति हैं । मनुष्य तो यों ही किसी की मृत्यु का निमित्त बन जाता है । तुम यह भयंकर क्रोध त्याग दो । ऋषियों की आज्ञा से पराशर ने भी क्षमा स्वीकार की और अपनी यज्ञाग्नि को हिमाचल में छोड़ दिया। वह आग जब भी राक्षस, वृक्ष और पत्थरों को जलाती फिरती है ।

बौद्ध धर्म में वर्णित क्षमा

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ।3।

(1,3) पृष्ठ 3 धम्मपद

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया –जो ऐसा मन में बनाये रखते हैं, उनका वैर शांत नहीं होता ।

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि में ।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ।4।

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया – जो ऐसा मन में नहीं बनाये रखते हैं, उनका वैर शान्त हो जाता है ।

न हि वरैन वेरानि सन्मन्तीध कुदाचनं ।
अवरैन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ।5।

इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते, अ–वैर (मैत्री) से ही शान्त होते हैं यह सदा का नियम है ।

परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे ।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ।6।

अनाड़ी लोग इसका ख्याल नहीं करते कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे, जो इसका ख्याल करते हैं, उनके सारे कलह शान्त हो जाते हैं ।

यो वे उत्पतितं क्रोधं रथं भन्तं व धारये ।
तमहं सारथिं ब्रूमि, रस्मिग्गाहो इतरोजनो ।2।

धम्मपद (17,2) पृष्ठ 160

जो चढ़े क्रोध को भ्रमण करते रथ की भाँति रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूँ दूसरें तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं।

अहं नागोव संगमे चापतो पतितं सरं ।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ।1।

(23,1) पृष्ठ 213 धम्मपद

जैसे युद्ध में हाथी धनुष से घिरे बाण को सहन करता है, वैसे ही मैं कटु वाक्य को सहन करुँगा, क्योंकि दुःशील लोग ही अधिक है ।

दन्त नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरुहति ।
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु योतिवाक्यं तितिक्खति ।2।

दान्त (शिक्षित) (हाथी) को युद्ध में ले जाते हैं, दान्त पर राजा चढ़ता है, मनुष्यों में भी दान्त (अपना दमन किया हुआ) श्रेष्ठ है, जो (दूसरों के) कटु वाक्यों को सहन करता है ।

वरं अस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा ।
कुञ्रा च महानागा अत्तदन्तो ततो वरं ।3।

खच्चर, अच्छी जाति के घोड़े और महानाग हाथी दान्त कर लिये जाने पर अच्छे होते हैं। जिसने अपने को दमन कर लिया है, वह उनसे भी अच्छा है ।

न हि एतेहि यानेहि गच्छेय अगतं दिसं ।
यथात्तमा सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ।4।

इन यानों से कोई निर्वाण की ओर नहीं जा सकता । अपने को जिसने दमन कर लिया है, वही सुदान्त वहाँ पहुँच सकता है ।

अक्षमा से राक्षस क्षमा से सिद्ध

मगध देश की राजधानी के बाहर सुन्दर फूलों का एक बाग था, जिसमें सुरभित और रंग–बिरंगे फूल हुआ करते थे। अर्जुन मालाकार का यह बगीचा था। उसकी आजीविका का यही एक साधन था। बन्धुमती उसकी पत्नी थी। वह सुन्दर और रुपवती थी। उसके अंग–अंग से यौवन फूट रहा था। पुलकित यौवन युक्त रुपवती को पाकर अर्जुन परम प्रमुदित था।

बाग के मध्य भाग में यक्ष का एक देवालय था । अर्जुन मालाकार के पूर्वज इसकी आराधना करते चले आ रहें थे। अर्जुन अभी बाग में फूल चुन रहा था और

बन्धुमती यक्षामतन में पूजा करने को आई । राजगृह में ललिता नाम की एक गोष्ठी थी, जिसमें स्वच्छन्द, आवार, क्रूर, व्यभिचारी लोग मिले हुए थे । उस गोष्ठी के छह पुरुष आज इधर आ निकले । उन्होंने बन्धुमती को यक्षायतन में प्रवेश करते देखा। मन की प्रसुप्त वासना जाग उठी । अर्जुन को लोह श्रृंखल से बाँधकर वे छह पुरुष बन्धुमती के साथ अनार्य कर्म करने लगे ।

पुरुष चाहे कितना ही बलहीन एवं अशक्त क्यों न हो वह अपने सामने ही अपनी पत्नी का अपमान नहीं सह सकता । पुरुष में पुरुषत्व नहीं, यह वज्र प्रहार की सी चोट होती है तथा नारी में सौन्दर्य नहीं हो भी। उन छह व्यक्तियों का कर्म अुर्जन के पुरुषत्व की चुनौती थी । यक्षायतन में अपनी और अपनी पत्नी की दुर्दशा देखकर अर्जुन का मन ग्लानि से भर गया । वह यक्ष को भर्त्सना करते हुए कहने लगा –

"क्या तेरी भक्ति का यही फल है ! क्या हम तेरी पूजा इसलिए करते है।"

अर्जुन के इस उपालम्भ से यक्ष ने उनके शरीर में प्रवेश किया । अर्जुन के समस्त बन्धन टूट गये और उसने अपने हाथ में लोह मुद्गर लेकर छहों पुरुषों और अपनी पत्नी बन्धुमती को मार डाला । लगातार 5 महीने और तेरह दिनों तक अुर्जन का यही क्रम रहा । इस बीच उसने 1141 मनुष्यों का घात किया । वह अपने आप में बेभान था और हिंसा करना उसका नित्य कर्म बन गया था ।

राजा श्रेणिक के आदेश से नगरी के द्वार बन्द हो गये । घोषणा कर दी गई कि – "जिसे अपना जीवन प्रिय हो, वह नगरी के बाहर न निकले ।"

भगवान महावीर के पधारने की सूचना राजा को और नगरी की जनता को भी मिली । परन्तु किसी का साहस नहीं हो सका । जीवन का मोह सबको अवरुद्ध किए हुए था ।

मेघ की गर्जना होने पर मयूर नाचता है, तो कमल की सुरभि पर भ्रमर गु जार करता है, तब भगवान के आने पर भक्त घर की दीवारों में कैसे बन्द रह सकता है। मात–पिता आदि सभी के समझाने पर भी सुदर्शन प्रभु के दर्शन–वन्दन को चल ही पड़ा। जीवन की अपेक्षा सुदर्शन को प्रभु के दर्शन अधिक प्रिय था। अर्जुन को उसे जरा भी भय नहीं था ।

अभय होकर सुदर्शन धीरे मन्द गति से बढ़ रहा था। सहसा काल बनकर अर्जुन सामने आ पहुँचा था । सुदर्शन ने मन में प्रतिज्ञा की, यदि इस संकट से बच गया, तो प्रभु के दर्शन करुँगा नहीं बच सका तो सागारी संथरा है ।

अर्जुन क्रोध में भरकर आया था परन्तु सुदर्शन के सामने वह निस्तेज हो गया। शरीर से यक्ष के निकल जाने पर वह निःसत्व होकर धरणीतल पर गिर पड़ा। भौतिक बल पर अध्यात्म बल की यही महान विजय थी। क्रूर और बलवान्

अर्जुन सुदर्शन के सामने दीन और निर्बल बनकर पड़ा हुआ था ।

अर्जुन ने सुदर्शन की ओर शान्त नेत्रों से देखते हुए कहा :–

"देवानुप्रिय, तुम कौन हो ! कहाँ पर जाना चाहते हो ?" मेरा नाम सुदर्शन है। भगवान महावीर का मैं भक्त हूँ। प्रभु के दर्शन को जा रहा हूँ।" सुदर्शन ने मधुर स्वर में कहा – तभी! तो क्या मैं वहाँ नहीं चल सकता। क्या मुझे दर्शन का अधिकार नहीं है ? अर्जुन ने आशा भरी आँखों से सुदर्शन की ओर देखा। क्यों नहीं अवश्य चल सकते हो। वहाँ पर किसी का प्रवेश निषिद्ध नहीं है। अपावन भी पावन हो जाता है। अर्जुन का मन बल्लियों उछल पड़ा। वह कहने लगा – अच्छा बहुत अच्छा। मैं अपावन हूँ, अब पावन बनने का संकल्प है मेरा। अर्जुन सुदर्शन के साथ चल पड़ा।

भगवान् ने अर्जुन से कहा – अर्जुन सावधान हो जा ! मनुष्य जीवन को सफल कर लें ! अतीत तो बीत चुका है, अब भविष्य तेरे हाथ में है । धर्म में वह शक्ति है, जिससे कल का अपावन आज पावन बन सकता है । विश्वास बदलते ही विश्व बदल जाता है, वत्स !"

अर्जुन मालाकार भगवान का शिष्य हो गया। आगार से अनगार बन गया। वह जीवन का नया मोड़ लेकर नयी दिशा में बढ़ने लगा।

भक्त–पान के लिये अर्जुन भिक्षु, नगर में जाता। पर वहाँ उसे मिलते पत्थर, डण्डों की मार, चारों ओर की चोट और अपशब्द के तीखे बाण – जो सीधे मन से टकराते परन्तु अर्जुन मुनि शांत और धीर था। मन में सोचता यह सब तो मेरा अपना किया कर्म है। मेरी क्रूरता से ये सभी पीड़ित थे। मैंने कितनी हिंसा की थी।" अपने अतीत को याद करके अर्जुन मुनि का मानस ग्लानि से भर–भर जाता था। छह मास तक लगातार लोगों के ताड़न, र्जिन को अर्जुन ने शांत भावे वहन किया। पन्द्रह दिनों की संलेखना करके संयम और तप से आत्मा को भावित किया और अन्त में वह अपावन से पावन बन गया। सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गया। (श्वे. जैन साहित्य)

शत्रु के लिये शस्त्र

एक बार कृष्ण, बलदेव, सत्यक और दारुक चारों मिलकर वन विहार को गए। वहीं पर सूर्य अस्त हो जाने पर एक वट–वृक्ष के नीचे चारों ठहर गए। सोचा "विकट वन है, चारो श्रान्त हैं, नींद गहरी आयेगी। किसी प्रकार का उपद्रव न हो, इसलिये एक–एक प्रहर तक प्रत्येक जागरण करें, और शेष सोते रहे।" सब सहमत हो गये ।

दारुक ने कहा "पहला काम मेरा । आप सब आनन्द से सो जाएं, मैं प्रहरी हूँ ।"

एक पिशाच आकर बोला, 'मैं भूखा हूँ। बहुत दिनों से भोजन नहीं मिला। तेरे इन सोए हुए साथियों को मैं खा जाना चाहता हूँ।"

दारुक ने गर्जनकर कहा मेरे बैठे, मेरे साथियों को खा जाना सुगम नहीं है।

दोनों में युद्ध होने लगा। दारुक का क्रोध जैसे–जैसे बढ़ता रहा, वैसे–वैसे पिशाच का बल भी बढ़ता रहा। दारुक थक चुका था। वह पिशाच को जीत नहीं सका।

दूसरे प्रहर में सत्यक और तीसरे बार में बलदेव भी उठा। और वे भी अपने साथियों की प्राण रक्षा के लिए जी–जान से पिशाच के साथ लड़ते रहे। परन्तु पिशाच को एक भी हरा नहीं सका।

चतुर्थ प्रहर में कृष्ण उठा। उसने अपने सामने एक पिशाच को खड़े देखा। पिशाच बोला "तेरे साथियों को खाने आया हूँ। बहुत काल का भूखा हूँ। आज विधि वशात् यथेच्छ भोजन मिल गया है ।"

कृष्ण ने निर्भय होकर कहा – "परन्तु मुझे जीते बिना तेरी इच्छा पूरी न होगी।"

कृष्ण बड़ा चतुर था। वह पिशाच और मनुष्य के बल से भली भाँति परिचित था। पिशाच युद्ध करने लगा। कृष्ण शांत भाव से खड़ा कहता रहा "शाबाश! तू बड़ा बलवान् है, तू योद्धा है! तू मल्ल है! तू बहादुर है! !"

पिशाच का बल क्षीण होने लगा। उसने अनुभव किया, जैसे कोई उसके बल को छीन रहा हो। वह लड़ता–लड़ता थक गया और भूमि पर गिर गया।

प्रभात बेला में दारुक, सत्यक और बलदेव तीनों उठे, कृष्ण ने देखा, सब के सब घायल हो रहे थे।

पूछा – "क्या बात है ?"

तीनों ने कहा "बात क्या है ? यह सब तो वन विहार का पुरस्कार है । रात्रि में पिशाच से युद्ध किया था, तभी तो बच गये हम सब ? "

कृष्ण ने मुस्कान भरकर कहा – "बन्धुओं, युद्ध तो पिशाच से मैंने भी किया था, पर मैं घायल नहीं हुआ। वह स्वयं ही घायल हुआ पड़ा है।"

तीनों ने देखा तो वस्तुतः कुछ दूरी पर घायल पिशाच भूमि पर अचेत पड़ा था। तीनों विस्मय के साथ बोले – "यह क्या बात है ?"

"बात कुछ भी नहीं है। पिशाच के लड़ने की एक कला होती है। वह तुम्हारे पास नहीं थी। मैं पिशाच से लड़ा नहीं, शान्त भाव से खड़ा रहा। वह उछल–कूद मचाता रहा। मैं उसके बल की प्रशंसा करता रहा। प्रशंसा का शस्त्र,

शत्रु के क्रोध की जीतने का अचूक साधन है। क्रोध को जीतने के लिए शांति की तलवार चाहिये।" कृष्ण ने कहा । (श्वे. जै. साहित्य)

विवाद से हानि

एक दिन आँख, मुख, नाक, कान हाथ, पैर आदि न मिलकर पेट के विरुद्ध सभा की । पैर बोलता है कि मैं दिन–रात चलता हूँ परन्तु पेट बैठ–बैठकर आराम से खाता है एव मजा उड़ाता है इसलिए जब तक पेट काम नहीं करेगा तब तक के लिए काम करना छोड़ देता हूँ । पैर के वक्तव्य के बाद हाथ उठकर अपना मत प्रगट करता है कि मैं लिखना, कृषि करना, कपड़े धोना आदि विभिन्न कार्य करता हूँ परन्तु पेट कुछ भी नही करता है। मात्र मजा उड़ाता है जब तक वह कार्य नहीं करेगा तब तक पेट के विरुद्ध हड़ताल करुगा। इसी प्रकार मुख बोलता है कि मैं बोलता हूँ, पढ़ाता हूँ, गीत गाता हूँ, भोजन को चबाकर खाता हूँ परन्तु पेट आराम से हराम करता है। इसलिये मैं भी इसके विरुद्ध बोलना, खाना, पढ़ाना, गाना सब बन्द करता हूँ। इसी प्रकार आँख, कान आदि ने भी हड़ताल कर दिये । पेट सबकी बात सुनकर बिना बोले चुपचाप बैठा रहा, कुछ दिन के बाद खाना, पीना, चलना, बोलना आदि के अभाव से शरीर के साथ–साथ हाथ–पैर, आँख–कान आदि दिनों दिन क्षीण होते गये । जब हाथ – पैर आदि को असहनीय वेदना हुई तब वे परस्पर में विचार करने लगे, कि क्या कारण है कि हम लोग बिना काम किये ही दुर्बल, क्षीण एवं शक्तिहीन होते जा रहे हैं । वे परस्पर विचार–विमर्श करके सुबुद्धि के पास सलाह लेने गये। सुबुद्धि ने सम्पूर्ण पूर्व इतिहास के बारे में जांच पड़ताल की। सबसे मत सुनने के बाद सुबुद्धि मन्द हास्य से बोलती है कि ठीक है आप लोगों का काम स्थूल एवं बाह्य होने के कारण दिखाई देता है किंतु पेट का कार्य सूक्ष्म एवं अन्तरंग होने के कारण दिखायी नहीं देता है किन्तु पेट जो कार्य करता है वह मूक रुप से गुप्त भाव से सभी के लिए करता है। वह भोजन को पचाकर सार तत्व को आप लोगों के लिए भेजता है, जिससे आप लोग जीवन्त एवं शक्तिशाली हों। आप लोग तो कभी–कभी काम करते हैं तथा कभी–कभी आराम भी कर लेते हैं, परन्तु पेट तो अविरत रुप से आप लोगों के लिये मूक सेवक के समान कार्य करता ही रहता है। आप लोगों ने स्वकार्य के अहंकार के कारण पेट के विरुद्ध आन्दोलन करके पेट का खाना–पीना देना छोड़ दिया तब पेट से जो सार तत्व मिलता था वह सार तत्व मिलना रुक गया, इस कारण आपकी दुर्दशा हो रही है। इसलिये आप लोग उसका उपकार स्वीकार करके उसको जो भोजन–पानी देना बन्द कर दिया था पुनः देना शुरु कर दीजिये । तब आप लोगों की यह दुर्दशा नहीं रहेगी। सुबुद्धि की रहस्यपूर्ण बात सुनकर हाथ–पैर आदि ने स्वभूल को जनकार स्वीकार किया एवं आन्दोलन को छोड़कर पेट को खाना–पीना देना प्रारम्भ कर दिया इसके बाद पेट ने भी सम्पूर्ण अंगोपांग को जीवन–तत्व देना प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार परिवार, समाज, राष्ट, धर्म में कुछ निहित स्वार्थान्ध व्यक्ति होते

है जो कि स्वयं की प्रतिष्ठा, सत्ता, मान–सम्मान आदि के लिए दूसरों के उपकार भूलकर कृतघ्न होकर उपकारियों के विरुद्ध ही कार्य करते हैं, जिससे दूसरों के साथ–साथ स्वयं को अपूरणीय क्षति पहुँचती है एवं विघटन उत्पन्न हो जाता है। परस्पर वैर, शत्रुता, विघटन के कारण किस प्रकार अनेक संकट मनुष्य के ऊपर आ घिरते हैं उसका वर्णन श्री एलाचार्य ने कुरल काव्य में निम्न प्रकार किया है–

स्वजना यदि संक्रुद्धाः स्वयं विद्रोह भाजिनः ।
सन्निपाते विपत्तीनां जीवनं तर्हि यास्यति ।5।

गृहभेदी परिच्छेद 98

जब कोई भाई बन्धु तुम्हारे प्रतिकूल विद्रोह करें तो वह तुम पर अनगिनत संकट ला सकता है यहाँ तक कि उनसे स्वयं तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जायेंगे।

आस्थाने यस्य भूपस्य विद्यते कपटस्थितिः ।
एकदा सोऽपि तद् दोषात् तस्या लक्ष्यं भविष्यति ।6।

जब किसी राजा के दरबार में छल कपट प्रवेश कर जाता है तो फिर यह असम्भव है कि एक न एक दिन वह उसका स्वयं लक्ष्य न बन जाये ।

यथोर्भेदस्तयोरैक्यं नैव दृष्टं महीतले ।
पिधानेनावृतं पात्रं भिन्नमेव स्वरुपतः ।7।

जिस घर में भेदवृत्ति पड़ गई वह उस बर्तन के समान है, जिसमें ढ़क्कन लगा हुआ है, यद्यपि वे दोनों देखने में एक से मालूम होते हैं फिर भी वे एक कभी नहीं हो सकते ।

भेदबुद्धिर्गृहे येषां भूमिसाद्वै भवन्ति ते ।
घर्षणीव यंत्र संभिन्न लोहस्य कणका यथा ।8।

देखो जिस घर में फूट पड़ी हुई है वह रेती से रेते हुए लोहे के समान कण–कण होकर धूल में मिल जायेगा ।

पारस्परिक संघर्षः स्वल्पोऽपि तिलसन्निभः ।
यत्रास्ति तत्र सर्वस्वनाशो नृत्यति मस्तके ।9।

जिस घर में पारस्परिक कलह हैं सर्वनाश उसके सिर पर लटक रहा है, फिर वह कलह चाहे तिल में पड़ी हुई दरार की तरह ही छोटा क्यों न हो ।

"अंगुलियों का झगड़ा"

कैसे अड़ अभिमान में, करते तुच्छ विवाद ।
यही देखने को पढ़ो, अंगुलियों को वाद ।।

एक दिन हाथ की अंगुलियों में बुरी तरह झगड़ा छिड़ा। एक कहती – मैं बड़ी, दूसरी कहती – "मैं बड़ी। फैसला कराने के लिये सब–की–सब अंगूठे के

सामने अपने–अपने बड़प्पन का बखान करने लगी। सबसे पहले तर्जनी ने कहा – "मैं लिखती हूँ, चित्र बनाती हूँ, गलती करने वालो की भर्त्सना करती हूँ, भूले हुए को मार्ग दिखाती हूँ, इसलिये मैं सबसे बड़ी हूँ ।"

मध्यमा ने कहा – "मैं वाद्य की मधुर ध्वनि से सबके मन को खुश करती हूँ, चिमटी बजाती हूँ और आकार में भी सबसे बड़ी हूँ । तब मेरे बड़े होने में तो सन्देह ही क्या है ?"

अनामिका ने कहा – "देवों का पूजन करना, स्वास्तिक बनाना आदि सभी प्रकार के मंगलकार्य मेरे द्वारा सम्पन्न होते हैं। अंगूठी भी प्रायः मुझमें ही पहनी जाती है। अतः बड़ी कौन है, यह तो बताने की आवश्यकता ही नहीं है। मैं ही बड़ी हूँ।

कनिष्ठिका ने कहा – "किसी भी प्रकार का कार्य करते हुए जब कानों में खुजली होती है, तब नम्रभाव से सबकी सेवा करने वाली मेरे सिवाय और है ही कौन ? पौराणिक और ऐतिहासिक कथानकों में बलिदान की कहानियाँ भूमण्डल पर सदा गूंजती रही हैं, अतः मुझे सर्वाधिक महत्व मिलना चाहिये ।"

अंगूठेराम ने सबकी बात सुनी और कहा – "बहनों ! बड़प्पन को लेकर क्रोध, झगड़ा मत करो । यह अस्तित्व के सिद्धान्त को अपनाकर शान्ति से अपना कर्तव्य निभाती रहो। अपने–अपने स्थान पर सभी बड़ी हो। दूसरों के प्रति क्रोध, हीनता अैर क्षद्रुता की भावना ही व्यक्ति को हीन और क्षुद्र बनाती है ।"

"वैर से वैर शान्त नहीं होता"

दो स्त्रियाँ सौतिया मत्सर के कारण मरकर अनेक जन्मों से परस्पर बदला लेती हुई बुद्धकाल में यक्षिणी और कुलकन्या होकर श्रावस्ती में उत्पन्न हुई थी। कन्या सयानी होकर पति के घर गई। जब–जब उसे बच्चे होते, तब–तब यक्षिणी आकर उन्हें खा जाती। तीसरी बार उसने अपनी माँ के घर आकर प्रसव किया और जब बच्चा सयाना हो गया, तब अपने पति के साथ पुनः पति–गृह जाने के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में जेतवान महाविहार के पास बैठकर बच्चे को दूध पिलाती हुई उस यक्षिणी को आती देख, डर के मारे भागती हुई भगवान के पास गई और अपने नन्हें से पुत्र को भगवान के पाद–पंकजों पर रखती हुई बोली – "भन्ते ! इसे जीवन दान दीजिये ।" यक्षिणी को सुमन देवता ने जेतवन के द्वार पर ही रोक रखा था। भगवान् ने आनन्द को भेजकर उसे बुलाया और आकर खड़ा होने पर – "तू ऐसा क्यों कर रही है ? यदि तुम दोनों मेरे सम्मुख न आती, तो तुम्हारी शत्रुता कल्पों बनी रहती। क्यो वैर के प्रति वैर करती हो ? वैर अ–वैर से शान्त होता है, न कि वैर से" कहकर इस गाथा को कहा –

नहि वैरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवैरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनातनो ।।

इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते, अ–वैर (मैत्री) से ही शान्त होते हैं–यही सदा का नियम है ।

{गाथा के समाप्त होने पर यक्षिणी स्त्रोतापन्न हो गई । भगवान के कहने पर उसे वह स्त्री घर ले गई और तब से उसकी अग्र खाद्य–भोज्य से पूजा करने लगी ।}

"किसके कलह शान्त होते है ?"

कौशाम्बी के घोषिताराम में पाँच–पाँच के दो गिरोह, विनयधर और धर्मकथित भिक्षु रहते थे । एक समय उनमें विनय सम्बन्धी साधारण बात पर फूट हो गयी। भगवान ने बहुत समझाया, किन्तु नहीं समझे। पीछे अपने दोषों को समझकर परस्पर क्षमा याचना कर श्रावस्ती में भगवान के पास गये। भगवान ने – भिक्षुओं ! तुम लोगों ने बहुत बड़ा दोष किया । तुम्हारे समान दोषी कोई नहीं है,जो कि तुम लोग मेरे पास प्रव्रजित होकर, मेरे मिलाने पर भी नहीं मिले, समझाने पर भी नहीं समझे । ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा –

परे च न विभानन्ति मयमेत्थ यमामसे ।
ये च तत्थ विजानन्ति तता सम्यन्ति मेधगा ।।

अनाड़ी लोग इसका ख्याल नहीं करते कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे, जो इसका ख्याल करते हैं, उनके सारे कलह शान्त हो जाते हैं ।

"वैर के शान्त होने का उपाय"

भगवान के थुल्लतिस्स नामक एक चचेरे भाई थे। वह वृद्धावस्था में प्रव्रजित होकर श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में रहते थे। वे अपने से बड़े भिक्षुओं का आदर सत्कार नहीं करते थे। एक दिन कुछ आगन्तुक भिक्षुओं न उन्हें डाँटा, तब वे उठकर रोते हुये वे भगवान के पास गये। वहाँ जाने पर भगवान ने सब बात पूछकर उल्टे थुल्लतिस्स को ही उन भिक्षुओं से क्षमा माँगने को कहा, किन्तु उन्होंने क्षमा न माँगी। तब भगवान् ने उनको पूर्व–जन्म में वैसा ही होने को बतलाकर उपदेश देते हुए इन गाथाओं का कहा –

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये च तं उपन्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ।।

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया–जो ऐसा मन में ख्याल बनाये रखते हैं, उनका वैर समाप्त नहीं होता ।

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं न उपन्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ।।

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया–जो ऐसा मन में नहीं बनाये रखते हैं, उनका वैर समाप्त हो जाता है ।

(धम्मपद)

संघ में एकता सुखदायक है

जेतवन विहार में एक दिन बहुत से भिक्षु बैठे बात कर रहे थे कि इस संसार में कौन सा सुख है ? किसी ने कहा – राजसुख के समान दूसरा सुख नहीं है, किसी ने काम–सुख की ही प्रशंसा की । भगवान् ने उस समय आकर भिक्षुओं की इस चर्चा को सुन – "भिक्षुओ ! यह क्या कह रहे हो ? यह सारा संसार सुख–दुःखमय है, इस संसार में बुद्धोत्पाद, धर्म श्रवण संघ में एकता और एकतायुक्त हो तप करना ही सुखदायक है ।" कहकर इस गााथा को कहा –

सुखो बुद्धानं उत्पादो सुखा सद्धम्मदेसना ।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो ।।

सुखदायक है बुद्धो का जन्म, सुखदायक है सद्धधर्म का उपदेश संघ में एकता सुखदायक है एकतायुक्त हो तप करना । (धम्मपद)

हम अवैरी होकर सुखी है

शाक्य और कोलिय राज्यों के बीच रोहिणी नामक नदी के पानी को रोककर दोनों जनपदवासी खेत की सिंचाई करते थे। एक बार ज्येष्ठमास में फसल के सूखने को देखकर दोनों जनपदवासी शाक्य और कोलियों के नौकर अपने–अपने खेतों की सिंचाई करने के लिये रोहिणी नदी पर आये। दोनों ही पहले अपने खेतों को सींचना चाहते थे, अतः दोनों में झगड़ा हो चला। यह समाचार उनके मालिको शाक्य और कोलियों को मिला । वे सेना के साथ तैयार हो युद्ध करने के लिये निकल पड़े।

शास्ता ने प्रातः काल महाकरुणा सभापति में लोक को देखते हुए शाक्य और कोलियों के इस कार्य को देखा और उसी समय आकाश मार्ग से जा रोहिणी नदी के बीच आकाश में पालथी लगाकर बैठ गये । शाक्य और कोलियों ने भगवान् को देख हथियार फेंक वन्दना की। भगवान् ने "महाराज ! यह कौन सा झगड़ा है?" पूछा।

"भन्ते! हम लोग नहीं जानते हैं !"

"कौन जानता है ? "

"सेनापति जानता है।"

सेनापति ने उपराजा को बतलाया। इसी प्रकार पूछते हुए नौकरों से जानकर "भन्ते ! पानी के कारण।" कहा।

"महाराज! पानी का क्या मूल्य है ?"

"अल्प मात्र भन्ते !"

"महाराज ! क्षत्रियों का क्या मूल्य है ? "

"भन्ते, क्षत्रियों अमूल्य है ।"

" तो तुम लोगों को यह युक्त नहीं है जो कि पानी के कारण अमूल्य क्षत्रियों का नाश करने जा रहे हो ।"

यह सुनकर वह चुप हो गये । तब शास्ता ने उन्हें सम्बोधित करके – "महाराज ! क्यों ऐसा कर रहे हो ? आज मेरे न होने पर लोहू की नदी बहती। तुम लोगों ने आयुक्त किया । तुम लोग पाँच बैरों के साथ बैर–युक्त होकर विहार रहे हो, किन्तु मैं बैर रहित विहरता हूँ, तुम लोग क्लेश से पीड़ित हुए विहरते हो, किन्तु मैं उससे रहित हूँ ।" कहकर इन गाथाओं को कहा–

197 – *सुसुखं वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।*
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ।।1।।

198 – *सुसुखं वत ! जीवान आतुरेसु अनातुरा ।*
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ।।2।।

199 – *सुसुखं वत ! जीवाम उस्सुकेसु अनुस्सुका ।*
उस्सुकेसु मनुस्सेसु विहरान अनुस्सुका ।।3।।

वैरियों में अवैरी हो, अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं, वैरी मनुष्यों के बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं ।

पीड़ित मनुष्यों में पीड़ा रहित हो, अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं, पीड़ित मनुष्यों के बीच पीड़ रहित होकर हम विहार करते हैं ।

आसक्त मनुष्यों में अनासक्त हो, अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे है, आसक्त मनष्यों के बीच अनासक्त होकर हम विहार करते हैं । (धम्मपद)

क्षमाभाव एवं संगठन में शक्ति

एक कृषक के 4 लड़के थे। विवाह होने के बाद अलग–अलग होने के लिए विचार करके कारण और अकारण से परस्पर में झगड़ा करने लगे। परस्पर में कलह करते हुए देखकर उस कृषक ने उनको बहुत समझाया, परन्तु वे लोग एक भी नहीं माने। अन्ततोगत्वा वे चारों अलग–अलग हो गये। सम्पूर्ण पैत्रिक सम्पति चार भाग में विभक्त कर दी गई । घर पर पाँच गायें थी एक–एक गाय एक–एक लड़के के भाग्य में विभक्त होने के बाद एक गाय बच गई उस गाय को लेकर परस्पर में लड़ने लगे। उस गाय का भी 4 भाग करने के लिए वे लोग विचार करने लगे।

कृषक ने बहुत समझाया, गौ माता है, बहुत उपकारी प्राणी है, उससे हमारा बहुत उपकार हुआ है उसके बराबर 4 टुकड़े करके जघन्य पाप नहीं करना चाहिए। परन्तु द्वेष के कारण उन लड़कों ने पिता की हितापदेशी बात एक भी नहीं सुनी, तब कृषक बहुत चिंतित हुआ, तब उसने इनको संगठित करने के लिए एक उपाय विचार किया । कुछ लकड़ियाँ एक साथ बांधकर बोला कि जो उन लकड़ियों को तोड़ेगा उसे यह गाय मिलेगी तब चारों ने अलग–अलग उन लकड़ियों को तोड़ने के लिये भरसक कौशिश की परन्तु उनमें से कोई भी लकड़ियों को तोड़ने में समर्थ नहीं हुआ तब पिताजी बोले चारों मिलकर इन लकड़ियों को तोड़ों। जब वे चारों मिलकर उन लकड़ियाँ को तोड़ने लगे तब वह लकड़ियाँ टूट गई, तब पिताजी ने समझाया कि जब तुम एक–एक होकर लकड़ियों को तोड़ रहे थे तब लकड़ियाँ नहीं टूटी किन्तु चारों ने मिलकर तोड़ा तो टूट गई । इसलिये यह गाय एक एक के लिये नहीं है किन्तु चारों के लिए हैं क्योंकि तुम चारों ने मिलकर तोड़ी है । दूसरी बात यह है कि एक एक से लकड़ियाँ नही टूटी गई, इससे यह सिद्ध होता है कि तुम अलग अलग हो जाओगे तब तुम दूसरे शत्रुओं का मुकाबला नहीं कर सकते हो । परन्तु संगठित होकर मुकाबला कर सकते हो इसलिये तुम लोग अलग अलग मत होओ किन्तु एक साथ मिलजुलकर रहो । उपरोक्त घटना से एवं पिता के उपदेश से वे चारों प्रेम से एक साथ हो गये और पैत्रिक सम्पत्ति भी मिलाकर सब एक साथ उपयोग करने लगे।

उपरोक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि जब द्वेष वश विघटित होने के लिए मानव जुट जाता है तब करणीय और अकरणीय भी भूल जाता है। चारों मूर्ख लड़के पांचवी बची हुई गाय के चार टुकड़े करने के लिये तुले हुऐ थे, उन्हें यह भी भान नहीं था कि चार टुकड़े करने से महान् हिंसा का पाप लगेगा तथा गाय मर जायेगी और उससे जो उपकार हो रहा था उससे जी वंचित रह जायेंगे। इसी प्रकार अनेक स्वार्थान्ध व्यक्ति द्वेष के कारण घर, समाज, धर्म, राष्ट्र , देश का टुकड़े – टुकड़े करने में ही लगे रहते हैं उससे जो अपूर्वणीय क्षति होती है उस और उनकी दृष्टी ही नहीं जाती है। प्राचीन भारत में संयुक्त परिवार था जिसमें अनेक पीढ़ियों के व्यक्ति मिल–जुलकर एक साथ रहते थे, उनका रसोईघर एक ही था, एक साथ खाना पीना, उठना बैठना था तथा वे परस्पर सुख–दुःख में भाग लेते थे । भले उनका व्यापार अलग–अलग होता था । इस संयुक्त परिवार से सह–अस्तित्व, सहकार प्रेम, मैत्री भाव, संगठन का पाठ सीखते थे । परिवार एक छोटा सा समाज एवं राष्ट्र होने के कारण सुसंगठित परिवार के लिये मनीषी चिन्तकों के कुछ निम्नोक्त सूत्र मननीय, चिन्तनीय एवं अनुकरणीय हैं ।

नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नविथावसा दुरोणे ।

(अथर्ववेद – 5/2/6)

जिस घर में छोटे और बड़े सब मिलकर रहते हैं, वह घर अपने बल पर सदा सुरक्षित रहता है ।

मदेम शतहिमाः सुविराः । (ऋग्वेद – 6/4/8)

हम पुत्र–पौत्रादि अच्छे स्वजनों एवं परिजनों के साथ सौ वर्ष तक प्रसन्न रहें।

मित्रस्य याया पंथा । (ऋग्वेद – 5/64/3)

मुझे मित्र के पथ (जिस व्यवहार से अधिक से अधिक मित्र प्राप्त हो) से चलना चाहिये ।

अद्रुहा देवौ वर्धते । (ऋग्वेद – 5/68/4)

द्रोह न करने वाले देव (अच्छे साथी) ही संसार में अभ्युदय प्राप्त करते हैं।

माता–पिता दिसा पुव्वा, आयरिया दक्खिणा दिसा ।
पुत्र–दारा दिसा पच्छा, मितमच्चा च उतरा ।।
दास कम्मकरा हेट्ठा, उद्धं समण – ब्राह्मणा ।
एता दिसा नमस्सेय्य, अलभत्तो कुले गिहा ।।

(दीर्घनिकाय – 3/8/5)

माता–पिता पूर्व दिशा है, आचार्य (शिक्षक) दक्षिण दिशा है, स्त्री–पुत्र पश्चिम दिशा है,मित्र उत्तर दिशा है –

दास और कर्मकर = नौकर अधोदिशा (नीचे की दिशा) है, श्रमण ब्राह्मण ऊर्ध्व – दिशा = ऊपर की दिशा है । गृहस्थ को अपने कुल में इन छहों–दिशाओं को अच्छी तरह नमस्कार करना चाहिए, अर्थात् इनकी यथायोग्त सेवा करनी चाहिये । राजगृह निवासी श्रेष्ठी पुत्र जृगाल पिता के अन्तिम कथनानुसार छहों दिशाओं को नमस्कार करता था, किन्तु वह "छह दिशा" के वास्तविक मर्म को नहीं जान पा रहा था । तथा गत बुद्ध ने "छह दिशा" की यह वास्तविक व्याख्या उसे बताई।

मा शूने अग्ने निषदाम नृषाम् ।

7/1/11 ऋग्वेद की सूक्तियाँ

हे अग्नि देव ! हम परिवार से रहित सूने घर मेंन रहें, और न दूसरों के घर में न रहें।

पक्षा वयो यथोपरि व्यस्म शर्म यच्छत । 8/47/2

जैसे पक्षी (चिड़ियाएँ) अपने बच्चों को सुख देने के लिए उन पर पंख फैला देते हैं, वेसे ही तुम सबको सस्नेह सुख प्रदान करो ।

स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा सम् । 10/120/3

तुम स्वादु (गृहं और धनादि प्रिय) से भी अधिक स्वादुतर (प्रियतर) सन्तान को स्वादु(प्रियतर) सन्तान को स्वादु (प्रिय) रुप माता–पिता के साथ संयोजित करो। मधु को मधु के साथ सब ओर से अच्छी तरह मिश्रित करो।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ।

16/4/1 अथर्ववेद

मैं धन एवं ऐश्वर्य का नाभि (केन्द्र) होऊँ मैं अपने बराबर के साथी जनों का भी नाभि होऊँ अर्थात जैसे कि रथचक्र की नाभि से चक्र के सब आरे जुड़े रहते हैं, वैसे ही सब प्रकार के ऐश्वर्य और बराबर के साथी मुझ से सम्बन्धित रहें, मैं सबका केन्द्र बनकर रहूँ।

प्रियः जनानां भूयासम् । 17/1/3

मैं जनता का प्रिय होऊँ ।

न हि माता पुत्रं हिनास्ति न पुत्रो मातरम् ।

5/2/1/18 ब्राह्मण साहित्य

माता पुत्र को कष्ट न दे और पुत्र माता को कष्ट न दे ।

माता पूर्वरुपं पितोत्तर रुपं प्रजा संहिता ।

7/16 आरण्यक साहित्य

माता पूर्व रुप है और पिता उत्तर रुप और प्रजा (सन्तान) दोनों के बीच की संहिता है ।

अध्याय 4

तोड़ो नहीं, जोड़ो

अंगुलिमाल नाम का एक बहुत बड़ा डाकू था। वह लोगों को मारकर उनकी उंगलियाँ काट लेता था और उनकी माला पहनता था। इसी से उसका यह नाम पड़ा था। आदमियों को लूट लेना, उनकी जान ले लेना, उसके बाएँ हाथ का खेल था। लोग उससे डरते थे। उसका नाम सुनते ही उनके प्राण सूख जाते थे।

संयोग से एक बार भगवान् बुद्ध उपदेश देते हुए उधर आ निकले। लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि वह वहाँ से चले जाएँ। अंगुलिमाल ऐसा डाकू है जो किसी के आगे नहीं झुकता।

बुद्ध ने लोगों की बात सुनी, पर उन्होंने अपना इरादा नहीं बदला। वह बेधड़क वहाँ घूमने लगे।

अंगुलिमाल को इसका पता चला। वह झुँझलाकर बुद्ध के पास आया। वह उन्हें मार डालना चाहता था, लेकिन जब उसने बुद्ध को मुस्कराकर प्यार से उसका स्वागत करते देखा तब उसका पत्थर का दिल कुछ मुलायम हो गया।

बुद्ध ने उससे कहा – " क्यों भाई , सामने के पेड़ से चार पत्ते तोड़ लाओगे ?" अंगुलिमाल के लिए यह क्या मुश्किल था ! वह दौड़कर गया और जरा सी देर में पत्ते तोड़कर ले आया।

बुद्ध ने कहा – "अब एक काम और करो। जहाँ से इन पत्तों को तोड़कर लाये हो, वहीं इन्हें लगाओ।"

अंगुलिमाल बोला – "यह कैसे हो सकता है ?"

बुद्ध ने कहा – "भैया ! जब तुम जानते हो कि टूटा जुड़ता नहीं तब फिर तोड़ने का काम क्यों करते हो !"

इतना सुनते ही अंगुलिमाल को बोध हो गया और वह उस दिन से अपना धन्धा छोड़कर बुद्ध की शरण में आ गया । (बच्चों की सौ कहानियाँ)

विश्व में रचनात्मक काम करने के लिए अधिक समय, धन, मन, तन एवं पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है परन्तु विध्वंसात्मक, कार्य करने के लिए अधिक समय, विवेक की आवश्यकता नहीं होती। जैसे–जापान के हिरोशिमा एवं नागासाकी नगर बनाने के लिए अनेक श्रमिक, शिल्पी, इन्जीनियर, धन, बुद्धि, समय की आवश्यकता हुई थी, परन्तु विध्वंस करने के लिये कुछ ही क्षण लगा। अभी उसका पुनः निर्माण के लिये अनेक समय, धन, जन की आवश्यकता हुई।

इसी प्रकार किसी भी संस्कृति, सभ्यता, धर्म, राष्ट्र, संगठन का निर्माण श्रम साध्य होता है किन्तु विघटन कम समय में हो जाता है। इसलिए कहते हैं "रोक का निर्माण एक दिन में नहीं हुआ था ।" एक बच्चे का पालन–पोषण एवं बड़ा करना सम सापेक्ष एवं कष्ट साध्य है किन्तु उसको मारना सरल है। इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य हो जाता है कि यदि वह दूसरों का उपकार नहीं करता है तो अपकार भी न करे। भिखारी को भीख नहीं देना है तो कोई अधिक दोष नहीं है किन्तु भिखारी को गाली देना, अपमान करना बहुत बड़ा दोष है। दूसरों को अमृत नहीं पिला सकते हो तो विष पिलाना भी छोड़ दो। अनेक व्यक्ति कलह प्रिय नारद, मन्थरा एवं शकुनी जैसे होते हैं। दूसरों के बीच फूट डालकर कलह कराकर आनन्दित होते हैं, जो फूट डालने वाले एवं कलह करवाने वाले होते हैं वे नरक से या असुरकुमार देव जाति से मरण प्राप्त करके मनुष्य हुए है या मरकर असुरकुमार या नारकी होने वाले हैं । पूर्वाचार्यो ने कहा भी है :–

विरोधिता साधु जनस्य लोके
सरोपता मूर्ख जन प्रसंगः ।
अतीव रोषः कटुका च वाणी
नरस्य चिन्हं नरका गतस्य ।।

साधुजन का जो विरोध करते हैं और मूर्खजन का सहवास करते हैं, अधिक क्रोध करते हैं, कटु वाली बालते हैं यह सब नकर से आने के चिन्ह हैं, अर्थात् जो नरक से निकलकर मनुष्य हुआ है या मरकर नारकी होने वाला है उन्हीं में ही इस प्रकार का स्वभाव पाया जाता है ।

खुद्दी कोही माणी मायी तह संकिलिट्ठो तवे चरिते य ।
अणुबद्ध बेररोई असुरेसूववज्जदे जीवो ।68।

जो क्षुद्र अर्थात् चुगलखोर हैं अथवा हीन परिणाम वाला क्रोधी स्वभाव वाला है, मान कषायी है, मायाचार प्रकृति रखता है तथा तपश्चरण करते हुऐ और चारित्र को पालते हुए भी जिसके परिणामों में संक्लेश भाव बना रहता है अर्थात् परिणामों मे निर्मलता नहीं रहती, जो अनन्तानुबन्धी रुप बैर को बाँधने में रुचि रखता है अर्थात् किसी के साथ कलह हो जाने पर उसके साथ अन्तरंग में ग्रन्थि के समान वैर भाव बाँधकर रखता है ऐसा जीव इन असुर भावनाओं के द्वारा असुर जाति में, अन्तर्भेद रुप एक अम्बरीष जाति है उसमें जन्मता है । ये अम्बरीष जाति के देव ही नरकों में जाकर नारकियों को परस्पर में पूर्वभव के वैर का स्मरण दिला–दिलाकर लड़ाया करते हैं और उन्हें लड़ते–भिड़ते दुःखी होते देखकर प्रसन्न होते रहते हैं ।

तित्थयराणं पडिणीओ संघस्य य चेहयस्स सुत्रस्य ।
अविणीदो णियडिल्लो किलिसियेसूववज्जेइ ।66।

जो तीर्थंकर के प्रतिकूल है संघ, जिन प्रतिमा, सूत्र आदि का अविनय करता है, मायाचारी है, दूसरों को ठगने में कुशल है ऐसा साधु किल्विषक जाति का देव उत्पन्न होता है, इन किल्विषक जाति के देवों को इन्द्र की सभा में प्रवेश करने का निषेध है । ये देव चाण्डल के समान माने जाते हैं जो साधु सम्यक्त्व से च्युत होकर तीर्थंकर देव की आज्ञा नहीं पालते हैं, उपर्युक्त दोषों को अपने जीवन में स्थान देते हैं वे पूर्व में यदि देवायु बाँध भी ली हो तो मरकर ऐसी देवदुर्गति में जन्म ले लेते हैं ।

अभिजुंजइ बहुभावे साहू हस्साइयं च बहुवयणं ।
अभियोगेहिं कम्मेहिं जुत्तो वाहणेसु उववज्जई ।65।

जो साधु अनके प्रकार के भावों का और हास्य आदि अनेक प्रकार के वचनों का प्रयोग करता है, वह अभियोग कर्मो से युक्त होता है इससे वाहन जाति के देवों में उत्पन्न होता है।

वाह्य में दिगम्बर मुनि, उपाध्याय, आचार्य, क्षुल्लक, क्षुल्लिका एवं आर्यिका, श्रावक, श्राविका, व्रती, ब्रह्मचारिणी, अथवा जैन होने से ही कोई सम्यग्दृष्टि, धर्मात्मा नहीं हो जाते हैं, जब तक उनके अन्दर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के गुण प्रगट नहीं हो जाते हैं । जो उपरोक्त भेष को धारण करके भी धर्मात्माओं के प्रति द्वेष, इर्ष्या, असूया भाव रखता है, फूट डालता है, कलह करता है वह यर्थाथ से सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा नहीं है ।

कुंद कुंद स्वामी ने भाव पाहुड़ में इसी रहस्य का प्रतिपादन निम्न प्रकार किया है–

अयसाण भायणेण य किं ते णग्गेण पावमलिणेण ।
पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण ।69।

भाव पाहुड

हे आत्मन्! अपयश का भाजन, पाप से मलीन, पैशून्य, हँसी, ईर्ष्या, माया आदि बहुत से विकारों से परिपूर्ण ऐसे बाह्य नग्न से क्या प्रयोजन है ।

उग्र क्रोधी एवं झगड़ालू प्रियों के लिये कुंद कुंद स्वामी रयणसार में मिथ्यात्व युक्त बताते हुए कहते हैं –

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो, अणिट्ठ पिसुणो सगत्वियोसूयो ।
गायण–जायण–भंडण–दुस्सणसीलो दु सम्मउम्मुक्को ।44।

(रयणसार)

क्षुद्र–रौद्र (स्वभाव वाले), रुष्ट, दूसरों को अनिष्ट चाहने वाले या करने वाले, चुगलखोर, अभिमानी, असहिष्णु (ईर्ष्यालु), गायक, याचक, कलह करने वाले, (गाली देने वाले) और दूसरों को दोष लगाने वाले – ये सब सम्यक्त्व रहित होते हैं।

बाणर–गद्दह–साण–गय–, बग्ध–बराह–कराह ।
मक्खि–जलूय सहाव णर, जिणवर धम्म विणास ।45।

बन्दर, गधा, कुत्ता, हाथी, बाघ, सूअर, कच्छप, मक्खी और जोंक के स्वभाल वाले मनुष्य जिनेन्द्र देव के धर्म का विनाश करने वाले होते हैं।

सम्मादिट्ठी कालं, बोल्लदि बेरग्गणाणभवेहिं ।
मिच्छादिट्ठी वांछा, दुब्भवालस्सकलहेहिं ।53।

सम्यग्दृष्टि वैराग्य और ज्ञानभाव से समय को व्यतीत करता है। (जब कि) मिथ्यादृष्टि आकांक्षा, दुर्भाव आलस्य और कलह में अपना समय बिताता है।

हिंसादिसु कोहादिसु, मिच्छाणाणेसु पक्खवाएसु ।
मच्छरिदेसु मदेसु दुरहिणिवेसेसु असुहलेस्सेसु ।58।
विकहादिसु रुद्दट्टज्झाणेसु असुयगेसु दंड़ेसु ।
सल्लेसु गारवेसु य, जो वट्टदि असुहभावो सो ।59।

हिंसादी (पापो) क्रोधादि (कषायों) मिथ्याज्ञान, पक्षपात, मात्सर्य मदों, दुरभिमिवेशों, अशुभलेश्याओं, विकथाओं, आर्त–रौद्र, ध्यानों, ईर्ष्या, असंयमों, शल्यों और मान बड़ाई में जो वर्तन होता है वह अशुभ भाव है ।

ण हु दंडिदि कोहादिं, देहं दंडिदि कहं खवदि कम्मं ।
सप्पो किं मुवदि वहा, वम्मीए मारदे लोए ।66।

(बहिरात्मा) क्रोधादि को दण्ड नहीं देता, (निग्रह नहीं करता), देह को दण्ड देता है । (तब वह) कर्मो को किस प्रकार नष्ट कर सकता है । जैसे लोक में बांबी (साँप के बिल) को मारने पर (नष्ट करने पर) क्या साँप मरता है ?

दंडयणयरं सयलं डहिडं अब्भंतरेण दोसेण ।
जिण लिंगेण वि बाहू पडिओ सो रउरवे णरये ।48।

जिनलिंग सहित भी बाहु नामक मुनि अभ्यन्तर क्रोध के कारण दण्डक राजा के सारे नगर को अपने अशुभ तैजस शरीर के द्वारा जलाकर रौरव नरक में गया था।

अवरोत्ति दव्व सवणो दंसण वरणाण चरण पब्भट्ठो ।
दीवायणुत्ति णामो अणंत संसारिओ जाओ ।50।

जिस प्रकार बाहु मुनि क्रोध के कारण अनंत संसारी हुआ था उसी प्रकार

दर्शन भेष ज्ञान चारित्र से भ्रष्ट जिनवचन में प्रतीति नहीं करने वाला, भावरहित द्रव्य रूप से व्रतों का पालन करने वाला, दीपायन नामक मुनि कर्मवश अनंत संसारी हुआ था।

उपरोक्त आगम वचन से सिद्ध होता है कि जो परस्पर कलह आदि करते हैं वे दुर्गति के पात्र बनते हैं । भले वे मुनि आदि बाह्य लिंग को धारण करें या द्रव्य श्रुत के महान् अध्येता भी बनें । अन्तरंग में भाव विशुद्धि के अभाव से वात्सल्य प्रेम की अनुपस्थिति में भेषधारी, द्रव्यश्रुत का ज्ञानी कभी भी धर्मात्मा नहीं हो सकता है । कुंद–कुंद स्वामी ने भाव पाहुड़ में लिखा है।

केवलि जिण पण्णत्तं एयादस अंग सयल सुयणाणं ।
पढिओ अभव्य सेणो णा भाव सवणत्तणं पत्तो ।52।

भावपाहुड़

केवलि जिनेन्द्र द्वारा प्रणीत एकादश अंग, रुप, सकलश्रुत ज्ञान को पढ़ता हुआ अभव्यसेन भाव श्रमणत्व को प्राप्त नहीं हुआ ।

बाह्य विशेष द्रव्य श्रुत के अभाव से भी भाव विशुद्ध है तो वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि, धर्मात्मा मुनि आदि हो सकता है । कहा भी है –

तुसमांस घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य ।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ ।53।

शास्त्रों का जानकार न होते हुए भी "तुषमास भिन्न" ऐसा शब्द मात्र घोषता हुआ महानुभाव शिवभूति नामक मुनिराज भाव विशुद्धि होने से शीघ्र ही केवलज्ञानी हुए थे।

उपरोक्त सिद्धान्त से यह सिद्ध होता है कि केवल बाह्य लिंग, भेद, द्रव्यश्रुत, धर्मात्मा बनने के लिए पर्याप्त नहीं है। वेषादि तो केवल बाह्य साधन है। जिस बाह्य साधन से साध्य की सिद्धि हो वही यथार्थ साधन है नहीं तो, वे साधन अकिंचितकर हो जाते हैं। इसीलिए धर्मात्माओं, सम्यग्दृष्टियों के लिए अन्तरंग गुण सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र की एकता रुप धर्म की आवश्यकता है। केवल परम्परागत जैन कुल में उत्पन्न होने पर या कुछ पदवीधारी, लिंगधारी होने से यथार्थ धर्मात्मा जैन नहीं हो सकते हैं। उसके लिए अनिवार्य सम्यग्दर्शनादि गुण प्रकट होना चाहिये। सम्यग्दर्शन के अभिन्न गुण प्रकट होते हैं। यथा –

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य ।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छलु पहावणा य ते अट्ठ ।।

(1) निःशंकित , (2) निःकांक्षित, (3) निर्विचिकित्सा, (4) अमूढ़दृष्टि, (5) उपगूहन, (6) स्थितिकरण, (7) वात्सल्य, (8) प्रभावना। ये सम्यग्दृष्टि के अष्ट अंग होते हैं। जिस प्रकार शरीर के मुख्य आठ अंग होते हैं उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि

के ये मुख्य आठ अंग हैं। आठों अंग रहित सम्यग्दर्शन अपूर्ण होने के कारण सम्यग्दर्शन निर्दोष नहीं होता एवं हीनाक्षर मंत्र जैसे विष को निर्विष करने में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार अंगहीन सम्यग्दर्शन संसार रुपी विष को निर्विष करने में असमर्थ रहता है। यथा –

नांगहीन मलं छेत्तुं दर्शनं जन्म सन्ततिम् ।
नहि मन्त्रोऽक्षर न्यूनो निहन्ति विष वेदनां ।21।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

अतएव सम्यग्दृष्टि को सम्पूर्ण अंगों का परिपालन विधिवत् करना चाहिये। जो सम्यग्दृष्टि है, वह ही वात्सल्यादि अंगों से युक्त होकर क्षमादि धर्म से मंडित होकर गृह, परिवार, समाज, देश, राष्ट्र में प्रेम, मैत्री, सहकार, साम्यभाव, संगठिन का प्रचार कर सकता है । एक कवि ने कहा है :–

प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट विकाय ।
राजा प्रजा जेहि रुचे, शीस देइ ले जाय ।।

यह प्रेम न बगीचे में उत्पन्न होता है, न बाजार में प्राप्त होता है । राजा हो या प्रजा, जिसे प्रेम चाहिये, प्रेम के लिए सिर देकर भी प्राप्त कर लेना चाहिये। किसी भी कारणवश प्रेम रुपी डोरी को बलपूर्वक नहीं तोड़ना चाहिये । कहा भी है :–

"रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चिटकाय ।
टूटे तो फिर ना जुरे, जुरे गाँठ पड़ जाये ।।"

रहिमन कवि कहते हैं कि प्रेम रुपी डोरी को जबरदस्ती नहीं तोड़ना चाहिये। टूटने पर फिर नहीं मिलता है , और मिलने पर भी गाँठ पड़ जाती है।

आज भाई–भाई, धर्मात्मा–धर्मात्मा, नेता–नेता, साधु–साधु, थोड़ी–थोड़ी बातों को लेकर झगड़ा, कलह, वाद–विाद करके फूट डाल देते हैं और उस फूट के कारण आज परिवार, धर्म, समाज, देश, राष्ट्र आदि बरबाद हो रहे हैं। लोकोक्ति है :–

खेत में फूट होवे तो सब कोई खावैं ।
घर में फूट होवे तो घर ढह जावै ।।

इस फूट के कारण ही प्रसिद्ध ग्रीक सभ्यता नाम शेष रह गयी । अत्यन्त धनी–मानी, समृद्ध शक्तिशाली भारतवर्ष भी अनेक वर्ष तक पराधीनता की जंजीर पहने रहा, धर्म के नाम पर विभिन्न देश–काल में भयंकर नर, धन, सभ्यता–संस्कृति, मन्दिरों का विध्वंस हुआ। अभी भी साम्प्रदायिक, राजनीतिक, भाषागत, प्रान्तगत, कलह, आतंकवाद युद्ध चल रहा है ।

वात्सल्य शब्द का अर्थ है कि गाय जैसे बछड़े के प्रति निःस्वार्थ भाव से

काल में नवयुवक नवयुवतियाँ ही धर्मरुपी रथ को वहन करके आगे गतिशील बनायेंगे। इसीलिये मेरा भी आह्वान है कि है नवयुवक–नवयुवतियों उठो, जागो अपना कर्तव्य सम्भालो। गिरते हुए धर्म रुपी रथ को अपने सुदृढ़ कन्धे पर धारण करके, उसको सच्चे धर्म के मार्ग पर गतिशील बनाइये। प्राचीन रोग के समान कलह–फूट, वाद–विाद को वात्सल्य रुपी अचूक औषधिक से दूर करके निरोगी, स्वस्थ, सबल, सुदृढ़, गतिशील बनो। वंशजों की जलती हुई झोपड़ी से पुरुषार्थहीन होकर देखते–देखते तुम भी मत जलो। उस झोपड़ी के लोभ से तुम्हारी भी इति श्री हो जायेगी। उस मोह को छोड़कर उस जलती हुई झोपड़ी से निकलकर सुरम्य गगनचुम्बी शीतल सुखप्रद वात्सल्यरुपी प्रासाद का निर्माण करके सुख से निवास करों। आज देश–विदेश में, राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रेम की डोरी से बँधकर अनेक राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय संस्था–समिति, संघ बन रहे हैं तो क्या मुष्ठीमय जैन धर्मावलम्बियों के मध्य में संगठन नहीं हो सकता है; अवश्य हो सकता है। मनुष्यों के लिये असम्भव नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। संगठन का बीज वात्सल्य में निहित है, इसीलिये वात्सल्य को अपने हृदयरुपी उपजाऊ जमीन में डालकर गुणग्राही, उपगूहन, स्थितिकरण, आदि जल, खाद रश्मी से उसको अंकुरित पल्लवित, पुष्पित एवं फलित करों। आज जैन धर्मावलम्बियों में संगठन के नाम पर अनेक संस्था, समिति, सभा, मिलन होते हुए भी वे अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पायें या अपने लक्ष्य से विपरीत गमन कर रहे हैं। इसीलिये यह संगठन आदि रचनात्मक कार्य के साथ–साथ विध्वंसात्मक कार्य करके सुख्यात एवं कुख्यात हो रहे हैं। कुख्यात होने के कारण संकुचित मनोभाव, वात्सल्य भाव रहित, निहित स्वार्थनिष्ठ, मतवाद, पंथवाद, जातिवाद, कुर्सीवाद, अर्थवाद, दलवाद (पार्टीबाजी) आदि हैं। संगठन के लिये ये सब विरोधात्मक कारण है, इसीलिये इन विरोधी कारणों को हटाने से संगठन अत्यन्त सरल एवं सहज साध्य है।

अक्षमाभावी (विरक्त) के लक्षण –

कथाव्यवच्छछेदो व्याकुलत्वं मुखे वैरस्यमनवैक्षणं स्थान त्यागः साध्वाचरितेऽपि दोषोभ्दावनं विज्ञप्ते च मौनमक्षमाकाल–यापनमदर्शनं वृथाभ्युपगमश्चेति विरक्तलिंगानि ।3।

नीतिवाक्यमृत, पेज – 282

जो व्यक्ति अपने प्रति या कथा के प्रति विरक्त हो, उसके निम्न प्रकार – लक्षण होते हैं – कथा भंग करना, अर्थात् जो कथा को ध्यानपूर्वक न सुने अथवा चलती हुई बातचीत को बीच में से काट देवे या न सुने, जो कथा सुनता हुआ भी व्याकुल हो जाय, जिसकी मुखाकृति उस समय म्लान हो जाये, जो वक्ता के सामने दृष्टिपात न करता हो, जिस स्थान पर बैठा हो वहाँ से उठकर दूसरी

जगह चला जाय, अच्छे कार्यो में भी दोष निकालता हो, कुछ प्रश्न करने पर मौन हो जाना, उत्तर देने में असमर्थ होकर व्यर्थ समय बिताना, अथवा मुख न दिखाना और बात स्वीकार करके उसे पूरा न करना ।

क्षमाभावी (अनुरक्त) के लक्षण –

दूरोदेवेक्षणं, मुखप्रसादः, संप्रश्नेष्वादरः, प्रियेषु वस्तुषु स्मरणं ।
परोक्षेगुणग्रहणं, तत्परिवारस्य सदानुवृतिरित्यनुरक्तलिंगानि ।4।

अपने प्रति श्रद्धालु अनुरागी व्यक्ति में निम्न प्रकार के लक्षण होते हैं – जो अपने को दूर से ही देखने लगे, अपने को देखकर जिसका मुखकमल विकसित हो जाये, प्रश्न करने पर विशेष आदर के साथ सुनना और उत्तर देना, अपने लिये की गई प्रिय बातों का स्मरण करना, परोक्ष में गुण–कीर्तन करना और सदा उसके परिवार वालों के अनुकूल व्यवहार करना अर्थात् – विनयशील होना।

निकटवर्ती विनाश वाले व्यक्ति की परिभाषा –

सर्वस्याप्यासन्नविनाशस्य भवति प्रायेण मतिर्विपर्यस्ता ।38।

विनाशकाल के निकट आने पर प्राय सभी की बुद्धि विपरीत हो जाती है, क्योंकि निकट मृत्यु वाला व्यक्ति हितैषियों की निन्दा और शत्रुओं की प्रशंसा आदि विपरीत कार्य करता है, जिससे ज्ञान होता है कि उसका विनाश निकटवर्ती है ।

नीतिवाक्यमृत, पेज – 289

संघे शक्ति कलौ युगे ।
कलियुग में संघ (संगठन) में शक्ति है ।

सत्य, अहिंसा, प्रेम, मैत्री, समता, क्षमता, क्षमा में संगठन निहीत है ।

(कनक नन्दी)

क्षमा के अमृतकण

आश्रयं धरणी दत्ते खनितारमपि ध्रवम् ।
तथा त्वं वाधकान्नत्यं क्षमस्वास्मिन् सुगौरवम् ।1।

धरती उन लोगों को भी आश्रय देती है कि जो उसे खोदते हैं । इसी तरह तुम भी उन लोगों की बातें सहन करों जो तुम्हें सताते हैं , क्योंकि बड़प्पन इसी में हैं।

(कुरलकाव्य परि. 16)

तस्मैं देहि क्षमादानं यस्ते कार्यविघातकः ।
विस्मृतिः कार्यहानीनां यद्यहो स्यात् तदुत्तमा ।2।

दूसरे लोग तुम्हें हानि पहुँचाएँ उसके लिये तुम उन्हें क्षमा कर दो, और यदि तुम उसे भुला सको तो यह और भी अच्छा है ।

स एव निर्धनो नूनमातिथ्याद् यः परङ्मुखः ।
एवं स एव वीरेन्द्रमौर्ख्यं येन विसह्यते ।3।

अतिथि–सत्कार से विमुख होना ही सबसे बड़ी दरिद्रता है और मूर्खों की असभ्यता को सह लेना ही सबसे बड़ी वीरता है ।

यदि कामयसे सत्यं हृदयेन सुगौरवम् ।
कार्यस्तर्हि समं सर्वैर्व्यवहारः क्षमामयः ।4।

यदि तुम सदा ही गौरवमय बनना चाहते हो, तो सबके प्रति क्षमामय व्यवहार करो।

प्रतिवैरं विधत्ते यो न स्तुत्यः स विदाम्बरैः ।
अरावपि क्षमाशीलो बहुमूल्यः स हेमवत् ।5।

जो पीड़ा देने वालों को बदले में पीड़ा देते हैं, बुद्धिमान् लोग उनको मान नहीं देते, किन्तु जो अपने शत्रुओं को क्षमा कर देते हैं वे स्वर्ण के समान बहुमूल्य समझे जाते हैं।

यावदेकदिनं हर्षो जायते सैरसाधनात् ।
क्षमादानवतः किन्तु प्रत्यहं गोरवं महत् ।6।

बदला लेने का आनन्द तो एक ही दिन होता है, किन्तु क्षमा करने वाले का गौरव सदा स्थिर रहता है।

प्राप्यापि महतीं हानिं स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ।
न लक्ष्यते परं चित्रं नैवेहा वैरशोधने ।7।

क्षति चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न उठानी पड़ी हो, परन्तु बड़प्पन इसी में है कि मनुष्य उसे मन में न लावें और बदला लेने के विचार से दूर रहें।

विधत्ते तव कार्याणां हानिं यो गर्विताशयः ।
सद्वर्तनस्य शस्त्रेण तस्यापि विजयी भव ।8।

घमण्ड में चूर होकर जिन्होंने तुम्हें हानि पहुँचाई है, उन्हें अपने उच्च वर्ताव से जी लो ।

गृहं विमुच्य ये जाता ऋषयो लोकपूजिताः ।
तेभ्योऽपि प्रवरा नूनं यैः खलोक्तिर्विसह्यजक ।9।

संसार–त्यागी पुरुषों से भी बढ़कर सन्त वह है, जो अपनी निन्दा करने वालों की कटु वाणी को सहन कर लेता है ।

महान्तः सन्ति सर्वेऽपि क्षीणकायास्तपस्विनः ।
क्षमावन्तमनुख्याताः किन्तु विश्वे हि तापसाः ।10।

उपवास करके तपश्चर्या करने वाले निस्सन्देह महान् हैं, पर उनका स्थान उन लोगों के पश्चात् ही है जो अपनी निन्दा करने वालों को क्षमा कर देते हैं।

MY PRAYER *(मेरी भावना)*

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन–दुःखी जीवों पर मेरे उर से करूणा स्त्रोत बहे।
दुर्जन, क्रूर–कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्य भाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे।।

May I always entrain a feeling of friendliness
for all living beings in the world;
May the spring of sympathy in my heart be
ever bubbling for those in agony and affliction'
May I never feel angry with the vite, the
vicious and the wrongly - directed '
May there be such an adjustment of things
that I may always remain tranquil in
dealing with them !

सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी ना घबरावे,
वैर पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे।
घर–घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर की जावे,
ज्ञान–चरित उन्नतकर अपना मनुज जन्म फल सब पावें।

May happiness be the lot of all'
May distress come nerar none;
Giving up hatred, sin and pride'
May the world pour forth one continuous
enternal beam of delight'
May Dharma become to main topic of
conversation in every household'
May evil cease to be easily-wrought'
May increase of wisdom and merit of works,
May men realise the purpose of human life
Moksha!

फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय–कटुक–कठोर शब्द नहिं कोई मुख से कहा करे।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से देशोन्नति रत रहा करें,
वस्तु–स्वरूप विचार खुशी से सब दुख संकट सहा करें।

May there be mutual love in the world;
May delusion dwell at a distance;
May on one evey utter unpleasant speech;
Or words that are harsh, with his tongue;
May men, heroes of the time;
Whole heatedly works in their country's cause;
May all understand the Laws of truth;
and joyfully sorrow and suffering ensure
Om, Peace, Shanti ! Shanati ! Shanti !

'Let me braing Love'

Lord, make me an instrument of thy peace-
'Where There is' hate, 'That I May' braing Love.
'Where There is' offence' 'That I May' braing pardon.
'Where There is' discord' 'That I May' bring union.
Where There is' error' 'That I May' bring truth.
'Where There is' doubt, 'That I May' bring faith.
Where There is' despai 'That I May' braing hope.
'Where There is' darkness, 'That I May' bring light.
'Where There is' sadness, 'That I May' bring joy.

''हे प्रभु, मुझे अपनी शान्ति का एक यन्त्र बना''
जहाँ घृणा है, वहाँ मैं प्रेम ला सकूँ।
जहाँ आक्रमण है, वहाँ मैं क्षमा ला सकूँ।
जहाँ मतभेद हैं, वहाँ मेल–मिलाप ला सकूँ।
जहाँ भूल है, वहाँ मैं सच्चाई ला सकूँ।
जहा. सन्देह है, वहाँ मैं विश्वास ला सकूँ।
जहाँ निराशा है, वहाँ मैं आशा ला सकूँ।
जहाँ अन्धकार है, वहाँ मैं प्रकाश ला सकूँ।
जहाँ उदासी है, वहाँ मैं प्रसन्नता ला सकूँ।

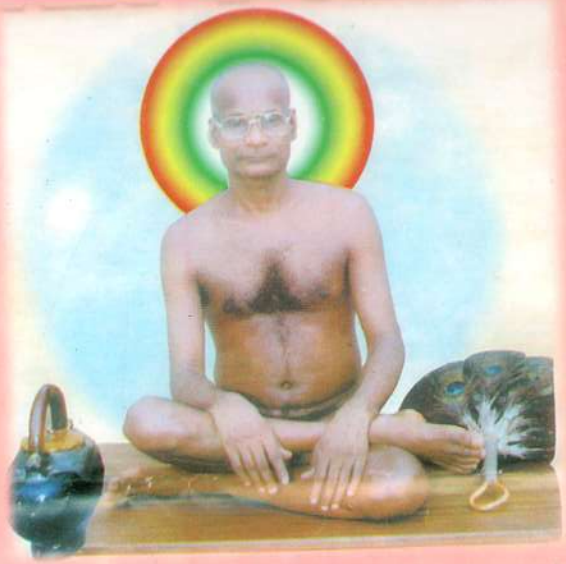

आचार्य श्री १०८ कनकनन्दी जी गुरुदेव

पथ प्रणेता

पूजनीय पिता श्री जीतमल जी नागदा एवं माता श्रीमती जगन्नाथी देवी नागदा
की पुण्य स्मृति में मोहनलाल, आशीष, अंकुर नागदा द्वारा समर्पित
(जगजीत मेमोरियल चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर के सौजन्य से)